THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178025

UNIVERSAL
LIBRARY

लेखक परिचय

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.092/D61M Accession No. G.H. 983

Author दीक्षित, भगीरथ प्रसाद।

Title महाकवि भूषण। 1953

This book should be returned on or before the date last marked below.

अध्ययन-माला
२

महाकवि भूषण

भगीरथ प्रसाद दीक्षित

साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९५३ ई०

मुद्रक:—रामआसरे कक्कड़
हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

'अध्ययन माला' का द्वितीय पुष्प आपके हाथ में है। इस योजना के अन्तर्गत हम ऐसी छोटी-छोटी किन्तु महत्वपूर्ण पुस्तकें अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखवा कर प्रस्तुत करना चाहते हैं जिनसे हिन्दी साहित्य-निर्माता प्राचीन एवं आधुनिक प्रमुख कवियों की कृतियों और जीवन-परिचय के साथ-साथ उनका आलोचनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जा सके। हिन्दी-क्षेत्र के विस्तार और छात्रों की संख्या-वृद्धि के साथ ही हमारा दायित्व भी बढ़ गया है कि हम साहित्य-पिपासुओं के लिए 'गागर में सागर' प्रस्तुत कर सकें। हमारा विनम्र प्रयास इसी दिशा में है।

महाकवि भूषण देश प्रेम की भावना के माध्यम से अभिव्यक्त तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं। उन्हें दरबारी कवियों की कोटि में रख कर उनका मूल्यांकन करना अपनी दृष्टि को संकुचित कर लेना है। उनके समय तक कुलाभिमान का स्थान जात्यभिमान ने ग्रहण कर लिया था। तत्कालीन परिस्थिति में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का कदाचित् वही स्वरूप हो सकता था। राष्ट्रीय भावना और 'राष्ट्रीयता' के भेद को दृष्टिगत रखे बिना इस सम्बन्ध में अपना 'फैसला' देना भ्रामक हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक के आलोचक इस विषय के प्रख्यात पंडित हैं। हम ऐसे विद्वतापूर्ण ग्रन्थ को सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं।

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
प्रकाशनाध्यक्ष

अवतरणिका

जीवन-संघर्ष में ओज और उत्साह की अनिवार्यता सर्वविदित है। इसी कारण वीररस की उद्भावना प्राग्-साहित्य से ही प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। जीवन-संघर्ष की जटिलता के चढ़ाव-उतार के साथ-साथ वीर-काव्य का अनुपात भी बदलता रहा है। युग-प्रभाव प्रेरित उत्साहवर्द्धक प्रेरणाओं का योग वीर भावना के उद्रेक में महत्वपूर्ण सहायक होता है। यद्यपि इसका क्षेत्र व्यक्तिगत मनोभावों से लेकर लोक-कल्याणकारी भावना तक फैला हुआ है।

वैदिक साहित्य तक में सामाजिक रक्षण और मानवता के उद्धार के लिए वीररस विषयक अनेक मंत्रों के उदाहरण मिलते हैं। परन्तु कालान्तर इस रस का ह्रास दिखलाई देने लगता है। प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य में अपेक्षाकृत ओज अथवा उत्साह वर्द्धक साहित्य कम दृष्टिगोचर होता है। नाना कारणों से उनमें अधिकतर शृंगाररस तथा अध्यात्म भावना का समावेश लक्षित होने लगता है। प्राकृत भाषा का सेतुबन्ध काव्य, संस्कृत का किरातार्जुनीय काव्य तथा वेणीसंहार नाटक और अपभ्रंश की कीर्तिलता एवं कीर्तिपताका आदि रचनाएँ अवश्य ऐसी हैं जिन्हें वीर-काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। दुर्गा सप्तशती जैसे कुछ खण्ड काव्यों को छोड़कर शेष धार्मिक तथा पौराणिक साहित्य ऐसा नहीं है जिससे वीर भावना को स्फुरण मिल सके।

कवियों और नाटककारों में भास, कालिदास, भवभूति, बाण, श्रीहर्ष, माघ आदि प्रमुख कवियों एवं काव्य रचयिताओं में से सभी ने शृंगाररस का ही विवेचन तथा विश्लेषण अधिक किया है और उसी को रसराज ठहरा कर वीररस की प्रायः उपेक्षा कर दी है। यहाँ तक कि भरत के नाट्यशास्त्र में भी शृंगाररस का ही विस्तार हमें दिखलाई देता है। वीररस के साथी रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस जो कि वीररस के सहयोगी माने जाते हैं इनका चित्रण भी बहुत ही न्यून मात्रा में दृष्टिगत होता है। इसकी

तुलना में शृंगाररस के भेद-प्रभेद और अंग-प्रत्यंगों का गहराई के साथ विस्तार किया गया है। नायक-नायिकाओं के भेदो, उनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और दशाओं एवं हाव-भावों का वर्णन इतने बड़े पैमाने पर किया गया है कि अन्य सभी रस दबे-से पड़े जान पड़ते हैं। इसे युग प्रभाव की विशेषता ही समझनी चाहिए।

हम यह नहीं कहते कि देश में वीरत्व का अभाव था। परन्तु जातिगत समूहों में बँटने के कारण राष्ट्रीय चेतना के अभाव में भारत की संगठन-शक्ति क्षीण पड़ गई थी। पंजाब में छोटे-छोटे राज्य होने से सिकंदर और दूसरे विदेशी आक्रमणकारी देश में घुसते चले आये। चाणक्य की नीतिमत्ता और चन्द्रगुप्त के शौर्य से ही हम उन्हें भारत से निकालने में सफल हुए। इन दोनों ने भारत की संगठन-शक्ति का भी सफलता के साथ संचालन किया। किन्तु अन्त में महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों से धन की अटूट राशि का हरण हुआ तथा इसके कुछ ही काल पीछे मोहम्मद गोरी के हमले से देश सैकड़ों वर्ष के लिए दासत्व शृंखला में जकड़ गया। इन शासकों में से शेरशाह एवं अकबर को छोड़ कर अन्य किसी बादशाह ने राष्ट्र-निर्माण का प्रयत्न नहीं किया हिन्दुओं की जातिगत विकृत व्यवस्था ने भी हमें दुर्दशाग्रस्त रहने में पूरी सहायता की। गोरखनाथ एव कबीरदास ने राष्ट्र-निर्माण का प्रयत्न अवश्य किया था परन्तु ये भी उतने सफल न हो सके।

भारतीय साहित्य के इतिहास में नवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक वीरगाथा काल कहा जाता है। यह काल खुमान रासौ, बीसलदेव रासौ और पृथ्वीराज रासौ के आधार पर निर्धारित किया गया है। परन्तु विषय प्रतिपादन से प्रकट होता है कि यह नामकरण ठीक नहीं है। खुमान रासौ में राणा खुमान से लेकर राणा राजसिंह तक का चरित्र-चित्रण हुआ है। खुमान का समय ८७० वि० से ९०० वि० तक माना जाता है और राजसिंह का समय १७०६ वि० से १७३७ वि० तक था। इस ग्रंथ के रचयिता दौलत विजय नामक जैन मुनि थे। इसका

विषय वीररस न होकर शान्त और श्रृंगार है। अतः इसे वीररस का ग्रन्थ नहीं माना जा सकता है। रति सुन्दरी तथा खुमान के विवाह का विस्तार से वर्णन किया गया है। वीररस के रूप में कुछ ऐतिहासिक उल्लेख ही मिलता है। फिर दौलत विजय राणा राजसिंह के समकालीन थे अतः इस रचना को खुमान के समय में ले जाना ऐतिहासिक तथ्य की उपेक्षा करना ही समझा जायेगा। एक छन्द में पद्म विजय, जय विजय, तथा शान्ति विजय नामक जैन मुनियों की चर्चा आई है अतः इस आधार पर इसे प्राचीन रचना मानना असंगत है। पद्म विजय तो दौलत विजय के गुरु थे ही शेष दो मुनि भी इन्हीं के समकालीन थे। अतः स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना राजसिंह के समय में लिखी गई, इसमें सन्देह नहीं।

बीसलदेव रासौ के बारे में स्थिति और भी स्पष्ट है। यह एक प्रेम काव्य है इसमें बीसलदेव का राजा भोज परमार की कन्या राजमती से विवाह का वर्णन है। इसके पश्चात् बीसलदेव का राजमती से रूठ कर उड़ीसा जाने का कथन किया गया है, फिर राजमती का विरह-चित्रण तथा अन्त में बीसलदेव का वापिस आकर राजमती को धार से ले आने का उल्लेख है। इसमें तो वीररस का नाम भी नहीं है। इसका रचयिता नरपति नाल्ह एक चारण था। ग्रंथ का निर्माण-काल दो भिन्न-भिन्न प्रतियों में १०७२ वि० तथा १२१२ वि० मिलता है। जयपुर वाली प्रति का लिपि-काल सं० १६६६ वि० है। इससे पूर्व की कोई पाण्डुलिपि न तो प्राप्त है और न कहीं किसी प्रकार का उल्लेख ही मिलता है। भाषा के विचार से भी यह रासौ सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व का विदित नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि यातो यह ग्रंथ सत्रहवीं शताब्दी का रचा हुआ है अथवा इसे आल्हा खंड की तरह मौखिक रूप में हम गाते चले आ रहे हैं जिसे चारण अपनी वृत्ति के लिये प्रयोग में लाते रहे हैं। अतः प्रेम-काव्य होने से न तो इसे वीर-काव्य के रूप में लिया जा सकता है और न प्राचीनता के विचार से ही इसका कुछ महत्व है। बीसलदेव अजमेर का प्रसिद्ध चौहान था जिसकी विजयों का वर्णन कुतुबमीनार (दिल्ली) की लोहे की

लाट पर उत्कीर्ण है जो कि सं० १२२० वि० में खुदवाया गया है। इसके बाद भी उसने १२२४ वि० में उड़ीसा विजय किया था। परन्तु नरपति-नाल्ह इस यात्रा का वर्णन रानी के ताने पर नौलखाहार की प्राप्ति के लिए उड़ीसा जाने तथा वहाँ के नरेश के आश्रित रहने का चित्रण करता है। इससे स्पष्ट है कि यह कथानक वीसलदेव की मृत्यु के बहुत पीछे निर्मित हुआ होगा। 'वीर-काव्य' के संपादक ने इस रचना को वीर-काव्य के अन्तर्गत लेकर उचित नहीं किया है।

इसके पश्चात् पृथ्वीराज रासौ की स्थिति पर विचार करना उचित प्रतीत होता है। यह चन्दबरदाई का रचा एक बहुत बड़ा ग्रन्थ माना जाता है जो कि पृथ्वीराज का दरबारो कवि और मंत्री था। पं० गौरी-शंकर हीराचंद ओझा इस ग्रन्थ को जाली मानते हैं इसके लिये वे निम्न-लिखित प्रमाण देते हैं—

(१) पृथ्वीराज रासौ चौहानों की उत्पत्ति अग्नि से मानते हैं जो कि आबू के यज्ञ से हुई थी। परन्तु जयानक कृत पृथ्वीराज विजय संस्कृत काव्य में चौहानों की उत्पति सूर्य से होना बतलाया गया है।

(२) चन्द कृत चौहान वंशावली न तो पृथ्वीराज विजय से मिलती है और न राजसिंह राणा के सं० १७३२ वि० के बिजौलिया वाले शिला-लेख से ही मेल खाती है।

(३) रासौ में पृथ्वीराज का जन्म दिल्ली नरेश अनंगपाल की पुत्री कमला के गर्भ से होना बतलाया गया है परन्तु पृथ्वीराज विजय एवं हम्मीर काव्य में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूर देवी कहा है जो कि त्रिपुरी के हैहय वंशी राजा तेजल की पुत्री थी।

(४) रासौ में पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के राणा समरसिंह से होने का उल्लेख है जो कि पृथ्वीराज के साथ शहाबुद्दीन से लड़ता हुआ मारा गया था। यह इतिहास विरुद्ध है : राणा समरसिंह इस युद्ध के बहुत पीछे हुए हैं।

(५) रासौ के अनुसार पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर गुजरात के राजा

भीम के हाथों से मारे गये थे और उसका बदला लेने के लिये पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई की और भीम राजा को युद्ध में मार गिराया था परन्तु शिलालेख आदि से यह घटना अशुद्ध जान पड़ती है। इसी प्रकार से रासौ में बहुत-सी घटनाओं का चित्रण अशुद्ध रूप में हुआ है।

इधर नई खोजों से रासौ के ग्रन्थ चार रूप में पाये जाते हैं। (१) वृहत् रूपान्तर, (२) मध्यम रूपान्तर (३) लघु रूपान्तर (४) लघुतम रूपान्तर।

वृहत् रासौ का संग्रह राणा अमरसिंह ने करवाया था। प्रथम राणा का समय सं० १६४२ वि० था कुछ विद्वान् राणा अमर सिंह द्वितीय का संग्रह कराया हुआ मानते हैं जिनका समय सं० १७५५ से १८०५ वि० तक था। रासौ की पुष्पिका से विदित होता है कि इसका सग्रह सं० १७६० वि० में किया गया था अतः इसे द्वितीय अमरसिंह के काल में संगृहीत मानना युक्तियुक्त है।

ताज-उल-मा आसीर में लिखा है कि शहाबुद्दीन गोरी ने अजमेर पर चढ़ाई की और पृथ्वीराज को मार कर उसके लड़के गोविन्दराज को राज दे दिया फिर वह दिल्ली चला गया। दिल्ली के राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली अतः स्पष्ट है कि दिल्ली और अजमेर अलग-अलग राज्य थे। पृथ्वीराज के कुछ ताँवे के सिक्के मिले हैं जिन में एक ओर "अश्वारोही मूर्ति" है और "श्री पृथ्वीराज देव" लिखा है तथा दूसरी ओर एक 'वृषभ मूर्ति' है और "आसावरी श्री सावंत देव" लिखा है। थोड़े से सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिन पर एक ओर "पृथ्वीराज" का नाम और दूसरी ओर "सुल्तान महम्मद साव" लिखा है। इससे विदित होता है कि पृथ्वीराज अपनी स्वाधीनता गँवा कर गोरी के सावंत रूप में भी रहे थे।

दशरथ शर्मा बीकानेर और मोहन सिंह उदयपुर इस समय रासौ की खोज में लगे हैं ये लोग जैन ग्रंथों के आधार पर लघुतम प्रति को शुद्ध ठहराते हैं। फिर भी अब तक इन दोनों साहित्य पुंगवों की खोज अधूरी ही जान पड़ती है सुरजन चरित्र, पुरान प्रबंध संग्रह, पृथ्वीराज प्रबंध, हम्मीर महाकाव्य, आदि ग्रन्थों के प्रकाश में आ जाने से कुछ नया

प्रकाश रासौ की रचना और उसके समय तथा घटनाओं पर भी पड़ता है। इससे हम आशा करते हैं कि कुछ दिनों में पृथ्वीराज रासौ विषयक समस्या अवश्य हल हो जायगी। अब यह तो निर्विवाद सिद्ध हो गया है कि वृहत रूप वाला रासौ अवश्य जाली है। रहा अन्य रूपों के बारे में उन पर अभी और भी गंभीरता से अन्वेषण, विवेचन और विश्लेषण होने की आवश्यकता है। राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों का अटूट भंडार भरा पड़ा है उसमें से और भी बहुत से रत्न प्रकट होने की आशा की जा सकती है।

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरगाथा काल के नाम से जिस साहित्यिक वातावरण की चर्चा की है वैसी भावना उस काल में नहीं थी। अतः नवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी के काल को वीरगाथा काल नाम देना व्यर्थ है। इस समय पूर्वी प्रान्तों में ८४ सिद्धों का प्रभाव दिखलाई देता था और पश्चिमी प्रान्तों में जैन साहित्य का बोलबाला था। इस प्रकार से शौरसेनी और मागधी प्रान्तों में ऐसी भावनाएं कार्य कर रहीं थी जिससे ओजस्विता, वीर-भावना तथा उत्साह-वर्द्धक सजीवता का ह्रास हो रहा था। इसके साथ ही संगठन-शक्ति का और भी अधिक अभाव था। तेरहवीं शताब्दी में अजमेर, कन्नौज और महोबा के राज्यों की पारस्परिक विरोधी भावना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। मोहम्मद शहाबुद्दीन गोरी के भारत पर आक्रमण करते समय देश की यही दशा हो रही थी।

उस समय देश में राष्ट्रीय-भावना का नितान्त अभाव था। समाजों भिन्न-भिन्न जातियों में विभक्त हो रहा था बौद्धों और जैनियों में चमत्कार का प्राधान्य था। संकुचित क्षेत्र में क्षत्रियत्व तब भी शेष था। परन्तु इनके नेताओं में अहंभाव की मात्रा बढ़ी हुई थी। साथ ही दर्प एवं असंतुलित असंयम शीलता का भी प्राचुर्य था। यही कारण था कि देश छिन्न-भिन्न होकर दासत्व की शृंखला में जकड़ता चला गया था।

पन्द्रहवीं शताब्दी में विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका अपभ्रंश भाषा में वीररस की अत्युच्च कोटि की रचनाएँ हैं। इनमें

मिथिला नरेश कीर्तिसिंह द्वारा असलान को हराने का चित्रण हुआ है जिसमें जौनपुर के नवाब इब्राहीम ने भी कीर्तिसिंह की सहायता की थी तथा नैतिक समर्थन दिया था। इन रचनाओं में वीररस का अच्छा स्फुरण हुआ है। मागधी भाषा में वीररस की सर्व प्रथम यही रचना दिखलाई देती है। इस दृष्टि से इन दोनों रचनाओं का स्थान और भी ऊँचा हो जाता है। विद्यापति ने संस्कृत, अपभ्रंश, मैथिल भाषा सभी में सफल रचना की हैं अतः ये सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर ही भारत भूमि पर अवतीर्ण हुए थे। परन्तु वीररस की उक्त दो ही रचना अब तक उपलब्ध हो सकी हैं।

इसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में श्रीधर नामक कवि ईडर में हुआ था जो वहाँ के राजा रणमल राठौर का दरबारी कवि था। इसने रणमल छन्द नामक छोटा सा ग्रंथ रचा था जिसमें पाटण के सूबेदार जफ़र ख़ाँ और रणमल के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध सं० १४५४ वि० में हुआ था जिसमें रणमल विजयी हुए थे।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में शिवदास नामक चारण कवि ने "अचलदास खीची री वचनिका" नामक एक छोटा-सा ग्रंथ रचा था जिसमें गागरौन के खीची राजा अचलदास का माँडौ के बादशाह होशंगशाह से युद्ध का वर्णन गद्य-पद्य में किया गया है इस युद्ध में अचलदास मारे गये थे।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में सूजा जी नामक चारण कवि ने "राव जैतसी रो छन्द" नामक ग्रंथ की रचना की थी। इसमें बाबर के पुत्र कामरान और बीकानेर नरेश राव जैतसी के युद्ध का चित्रण किया गया है जिसमें कामरान पराजित हुआ था। मुसलमान इतिहासकारों ने इसका उल्लेख नहीं किया। इस रचना में वीररस का अच्छा स्फुरण हुआ है।

सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् अकबर बादशाह शासन के में देश ने संतोष की सांस ली। इस बीच वीररस के कई अच्छे कवियों प्रादुर्भाव हुआ था जिनमें सूजा, जटमल और दुरसा का नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। परन्तु इस काल में एक दूसरी धारा भी तीव्र गति से आगे आ रही थी

जिसे 'रीति कालीन कविता' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसने भारतीय सामाजिक जीवन और राज दरबारों को शृंगार रस से ऐसा अभिभूत कर दिया कि वीररस और उत्साह का अत्यन्त ह्रास हो चला था। सत्रहवीं शताब्दी में इसी रस की प्रधानता थी।

अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में औरंगजेबी शासन देश प्रतिष्ठित होता है इसकी शासन प्रणाली अपने पूर्वजों से भिन्न थी अतः हिन्दुओं, शिया मुसलमानों और परिवार वालों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये थे। चित्तौड़ के राणा राजसिंह से भी खूब झड़पें हुई जिसका वर्णन मान कवि ने अपने 'राज विलास' में विस्तार पूर्वक किया है, यह रचना वीररस और उत्साह से पूर्णतया ओतप्रोत है। इन्हीं परिस्थितियों में भूषण का जन्म, शिक्षण और उत्थान हुआ था।

भूषण ने शिवाजी का आदर्श लेकर सारे देश में दौरा लगाया था। राज दरबारों में भूषण की ओजस्विनी कविताओं का ऐसा प्रभाव पड़ा कि शृंगारिक उच्चकोटि के कवियों की उक्त दरबारों में पूछ अत्यन्त कम हो गई। यही नहीं इस महाकवि के प्रभाव से गोरेलाल, रतन, सदानन्द, भूधर, सारंग, नाथ आदि कई वीररस के उत्कृष्ट कवियों का अविर्भाव हुआ था। यहाँ तक कि राजा भगवन्त राय खीची जैसे महानुभाव भी शासन की महत्ता बढ़ाने के साथ उच्चकोटि की वीररसमयी रचना करते दृष्टिगोचर होते हैं।

वीरकाव्य की यह परम्परा किसी न किसी रूप में स्वातंत्र्य संग्राम के अंतिम चरण तक चली आई। कालचक्र इसे निःशेष नहीं कर सका। परन्तु इस विकास-क्रम में इसे कई मोड़ों से होकर गुज़रना पड़ा है। यहाँ तक कि अब इसका विषय-क्षेत्र युद्धवीर तक ही सीमित नहीं रह गया है। सत्यवीर, धर्मवीर, दानवीर, तथा त्यागवीर आदि कई क्षेत्रों में इसका प्रसार होता आ रहा है। इस प्रकार वीरकाव्य द्वारा राष्ट्रोत्थान का कल्याणकारी मार्ग अनुदिन प्रशस्त होता जा रहा है।

भगीरथ प्रसाद दीक्षित

विषय-सूची

जीवनी खण्ड

१.	विषय प्रवेश	१–५
२.	परिस्थिति	६–८
३.	जन्म-काल तथा जन्म-स्थान	९–११
४.	वंश-परिचय	१२–१३
५.	वास्तविक नाम	१४–१८
६.	आश्रय दाता	१९–२२
७.	भूषण की उपाधि	२३–२४
८.	भ्रमण और राज्याश्रय	२५–४४

रचना खण्ड

९.	रचनाओं की विचारधारा	४५–६५
१०.	फुटकर कविताएँ	६६–७१

आलोचना खण्ड

११.	आलोचना	७२–८६
१२.	शब्द-साद्य	८७–८९
१३.	भूषण और शिवा जी	९०–९४
१४.	उत्तेजना और उत्साह	९५– १०२
१५.	तुलनात्मक आलोचना	१०३–१११
१६.	भाषा पर विचार	११२–११७
१७.	कहावतों और मुहावरों का प्रयोग	११८–११९
१८.	शैली	१२०–१२९
१९.	रसों का निरूपण	१३०–१३८
२०.	आलंकारिकता	१३९–१४२
२१.	महाकवि भूषण की उदार दृष्टि	१४३–१५५

संग्रह खण्ड

२२. शिव राज-भूषण	...	...	१५७–१६६
२३. शिवा बावनी	...	...	१७०–१८३
२४. छत्रसाल प्रशंसा	...	...	१८४–१८७
२५. फुटकर	...	...	१८८–१८८
२६. सहायक ग्रंथों की सूची	...	...	१८६–१६१

१. जीवनी खण्ड

विषय प्रवेश

अकबर बादशाह ने भारत में जिस शान्ति और सुख की वृद्धि करके देश को धन-धान्य पूर्ण कर दिया था वह तीन पीढ़ी तक अपना उत्कर्ष बनाये रखने में सफल हुआ और लगभग सौ वर्ष का वह वैभव पूर्ण शासन मुसलमानी काल में अपनी समता नहीं रखता, आज भी मुमताज महल का रौजा, मोती मसजिद, दिल्ली का किला, आगरे का किला, सीकरी के महल तथा सिकंदरा का मकबरा उनकी यादगार को ताजा बनाये हुए हैं। ये इमारतें तत्कालीन शासकों के सजीव चिह्न हैं। जिनके देखने के लिये विश्व के यात्री आगरे की यात्रा करने में अपना गौरव मानते हैं। यही नहीं, इसे विश्व के सप्ताश्चर्य में से एक का गौरव भी मिला हुआ है। शाहजहाँ बादशाह के इस गौरवमय काल के पश्चात् औरंगज़ेब का ऐसा कलुषित पूर्ण, अनाचार से भरा हुआ, साम्प्रदायिकता के पक्षपात से युक्त शासन आता है जिसने मुगलिया शासन की जड़ ही नहीं हिला दी वरन् उसका अन्त ही कर दिया।

इस औरंगजेबी अत्याचार को नष्ट भ्रष्ट करने और उस पर हावी होकर राष्ट्र को सत्पथ दिखाने में महाकवि भूषण ने सबसे अधिक महत्व-पूर्ण कार्य किया और उसे सफलता की सीमा तक पहुँचा दिया इसी में इस महाकवि की महत्ता निहित है। इस महान् कार्य के सम्पन्न करने में उसे क्या-क्या भगीरथ प्रयत्न करने पड़े और किन-किन राजा-महाराजाओं को भूषण ने अपने संगठन में सम्मिलित करके साधना का क्षेत्र प्रस्तुत किया था इसी की विवेचना और क्रिया-कलापों का विस्तार इस रचना में किया जायगा।

भूषण ने अपनी कार्य शैली में शिवाजी को प्रमुख स्थान दिया था। उसका मुख्य कारण यह नहीं था कि वे शिवाजी के दरबार में राजकवि

थे, वरन् यह था कि उन्होंने शिवाजी के आदर्श पर राष्ट्र का संगठन किया था। क्योंकि इसी छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण में औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिये थे। इसके सरदार एवं सिपाही शिवाजी के आतंक से ऐसे थरथर कांपते थे कि दक्षिण में जाने का नाम नहीं लेते थे। इसीलिये वे उसे ईश्वर का अवतार मानने में भी नहीं हिचके थे। भूषण छत्रपति शिवाजी के दरबार में कदापि नहीं थे उनका जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष पीछे हुआ था अतः उक्त किंवदन्ती नितान्त अनर्गल और मिथ्या है, जिसने भूषण कवि की महत्ता को ही लोप कर दिया है साथ ही उनके अत्यन्त उच्च कोटि के महत्वपूर्ण कार्यों को एक दूसरा ही रूप दे दिया गया है। इस प्रकार से पिछले २५०-३०० वर्ष के अज्ञानान्धकार ने वास्तविक इतिहास पर मोटा पर्दा डाल दिया है अन्य महाकवि तुलसी, सूर आदि के विषय में भी यद्यपि अनेक भ्रमपूर्ण बातों के फैल जाने से यथार्थता लोप-सी हुई दिखलाई देती है। पर महाकवि भूषण के विषय में तो यह बात और भी अधिक विस्तार से की गई है। इन्हीं किंवदन्तियों के सहारे हमारे चरितनायक का चित्र बिल्कुल उलट दिया गया है जिसमें सत्य-भावना का बहुत ही थोड़ा अंश शेष रह गया है।

इसी कारण से जब सन् १६२२ ई० में महाकवि भूषण पर मेरा प्रथम लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ तो पुरानी शैली के साहित्यकों में एक उथल-पुथल-सी मच गई। उन्होंने उन्हीं किंवदन्तियों का सहारा लेकर नवीन खोज का नव निर्मित भवन ढहा देना चाहा। परन्तु उस अन्वेषण का आधार सत्य और ज्ञान की पक्की नींव पर आश्रित था। मतिराम कृत वृत्त कौमुदी की वंशावली ने किंवदन्तियों की कल्पित इमारत को एक ही धक्के में भूमिसात् कर दिया। यह विवाद २५ वर्ष तक बराबर चलता रहा। जिस में अनुसंधान के सहारे भूषण के जीवन-चरित्र को एक बिल्कुल नया रूप मिल गया। 'वादे वादे जायते तत्व बोध': की कहावत के अनुसार भूषण कवि पर छिड़े विवाद ने उनके विषय में फैले हुए भ्रम और अज्ञान को बहुत कुछ दूर कर दिया।

इस विचार विनिमय में केवल मेरी ही खोज ने इस महाकवि के चरित्र को परिष्कृत करने का प्रयत्न नहीं किया वरन् विरोधी पक्ष लेने वाले याज्ञिक त्रय, मिश्र बंधु, तथा पं० कृष्ण विहारी जी मिश्र आदि के लेखों से भी मुझे अनुकूल सामग्री प्राप्त हुई थी जिसके लिये मैं उक्त सज्जनों का हृदय से आभारी हूँ।

इस कवि के विषय में मुझे अनेक लम्बी-लम्बी यात्राएं करनी पड़ीं। रीवाँ राज्य के पटेहरा नामक गाँव से सुरकी वंश की वंशावली प्राप्त हुई थी। हृदयराम सुरकी के बारे में स्टेट रेकर्ड से भी कुछ मसाला मिला था। असनी (फतहपुर) से तो उक्त वृत्त कौमुदी ही खोज में मिली थी। भरतपुर, तिकमापुर, नारनौल, पटियाला, भिनगा आदि स्थानों में पुस्तकालयों की ढूँढ़ ढाढ़ ने मुझे इतनी अधिक सामग्री दी कि विरोधी पक्ष वालों के उत्तर सप्रमाण दे सका 'भूषण विमर्श' की रचना उसी खोज पर अवलंबित है। इधर नये सस्करण में कुछ और भी नवीन सामग्री सम्मिलित कर दी गई है।

भूषण कवि के विषय में कितना गहरा भ्रम फैला हुआ था इसका इसी से अनुमान कर सकते हैं कि उनके असली नाम तक का साहित्यिकों को पता न था। उनका शिवाजी से क्या संबंध था? क्यों इस महाकवि ने शिवाजी की इतनी अधिक प्रशंसा की? उनके भाई कौन-कौन थे? वे किन-किन दरबारों में गये थे? उनकी जन्मभूमि कहाँ थी? तिकमापुर में कब जा बसे थे? जन्मकाल और 'शिवराज भूषण' का निर्माण काल क्या है? उनकी रचना का उद्देश्य क्या था? इत्यादि बातों का विवेचन करना ही इस रचना का उद्देश्य है जिसके विषय में केवल अनुमान एवं किंवदन्तियों का सहारा लेकर ही लेखक गण काम चला रहे थे। इस प्रकार से कवि के जीवन-चरित्र, उसकी ग्रन्थ रचना, भाषा और शैली तथा रचना की विवेचना और विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कुछ बातें पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया जायगा।

महाकवि भूषण वीर रस के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचनाओं में

इसी की प्रधानता है। अतः वीर रस के स्थायी भाव की पूर्ति हम इसी कवि से कर सकते हैं। अन्य किसी कवि की रचना में वीर रस का इतना उत्कृष्ट एवं गहरा परिपाक नहीं मिलता। यही बात भूषण को अन्य कवियों से भिन्न कर देती है। इस महाकवि की रचनाओं में उत्तेजनात्मक एवं उत्साह जनक दोनों प्रकार की भावनाओं का बाहुल्य है जो कि 'शिवा-बावनी' तथा 'शिवराज भूषण' के अध्ययन से सरलता से जाना जा सकता है। 'शिवाबावनी' के छन्द पढ़ते ही जनता में जोश का समुद्र उमड़ आता है; वे रचे ही इसीलिये गये हैं जो कि सेना संचालन के समय नव जीवन देकर उत्तेजित करने में समर्थ हो सकें! इसी प्रकार से 'शिवराज भूषण' के अधिकांश छन्द गंभीर और स्थायी उत्साह भरने में पूर्ण प्रभाव रखते हैं। भूषण की इसी विशेषता ने उसे सफल राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिपादन किया है। यही नहीं उसने अपने साहस पूर्ण प्रयत्न द्वारा स्वराज की सृष्टि करके औरंगजेबी शासन को ही ध्वस्त कर दिया था। अँग्रेजी शासन के भारतीय पुर्जों ने अपने तथा अपनी सरकार के ऊपर इसका प्रभाव न पड़ने पावे इस भय से भूषण विषयक नई खोज का तीव्र विरोध किया। परन्तु वे सब नितान्त असफल हुए अन्त में इसी के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्र को स्वराज्य की कुंजी जनता के हाथ लग गई। भूषण की रचना में उत्साह वर्द्धन के साथ राष्ट्र निर्माण की भी पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत है।

पिछले २१५० वर्ष के दासत्व में भारतीय समाज लगातार पददलित होता चला आया है। मध्यकालीन सन्त कवियों ने भी वैराग्य की महत्ता बढ़ाकर हमारे उत्साह को मंद कर दिया था। संस्कृत के श्रृंगारी कवियों ने तो देश में स्त्रैणता का प्रसार किया ही तुलसी-सूर आदि ने भी उसी भावना को बल दिया जिसे भास, कालिदास, भवभूति तथा श्रीहर्ष आदि ने पनपाया था। रीतिकालीन कवियों में देव, बिहारी आदि ने जो कुछ लिखा वह श्रेयस्कर नहीं सिद्ध हुआ। इसी का यह परिणाम हुआ कि हम दासता पर दासता लादते चले आये। यवन, शक, यूची, कुशाण, हूण, मुसलमान और अंग्रेज सभी की दासत्व श्रृंखला

हमारे पैरों को जकड़ती गई साथ ही उनके दोष के भी हम भागी बने। ये ही कारण हैं जिन से हम उबर नहीं पाये हैं। अतः उत्साह के श्रोत —भूषण की रचना—को बिना अपनाये हम में नव जीवन का संचार हो ही नहीं सकता। भूषण के पश्चात् उस देन की रक्षा हम नहीं कर पाये इसी से हम फिर दासता में जकड़ गये थे। यदि हमने अब फिर गफलत की तो देश का ही नहीं विश्व का भी महान अहित होने की संभावना है। क्योंकि भूषण की रचना में उत्साह भरने के साथ ही राष्ट्र निर्माण और आध्यात्मिकता दोनों का ही गहरा पुट लगा हुआ है। आशा है देश इस भावना को तत्परता से अपनाने का प्रयत्न करेगा। ताकि वह शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक सभी भावों की पूर्ति करने में फलीभूत हो सके। उत्साह जीवन का सर्वोत्कृष्ट श्रोत होने के कारण नव उद्भावनाओं, स्फूर्तियों एवं आविष्कारों का जनक होगा जिससे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सभी पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है। भूषण की रचना में वैदिक भावना की ही प्रधानता है। अतः इसकी भावना उन दोषों से बहुत कुछ मुक्त है जिसमें विदेशी आक्रान्ताओं ने अपनी प्रेरणा देकर समाज को कलुषित बना दिया है। इसीलिये हम इस महाकवि की रचना का गंभीर अध्ययन करना चाहिये तभी हमें आगे बढ़ने के लिये पथ पा सकते हैं।

परिस्थिति

महाकवि भूषण के जन्म-काल में देश की परिस्थिति बड़ी विचित्र हो रही थी। एक ओर औरङ्गजेबी शासन अत्याचार की सीमा पार कर रहा था उसने अपने भाइयों का बेरहमी से कत्ल करवा डाला था। हिन्दुओं पर जजिया कर लगा कर उनकी धार्मिक भावनाओं पर गहरी ठेस लगाई थी। सैकड़ों मंदिर, मसजिद के रूप में परिणित किये जा चुके थे। यहाँ तक कि विश्वनाथ मठ, केशव राय का देहरा, ज्ञानवापी तथा जामा मसजिद के रूप में परिणित कर दिये गये थे। शंख बजाना एक अक्षम्य अपराध करार दे दिया गया था। चन्दन लगाने तथा कंठी पहनने का किसी को साहस नहीं होता था। जोधपुर का राज परिवार जो कि सच्चे दिल से बादशाही सेवा में निरत था उसे षड्यंत्रों द्वारा मरवा कर उस के राज्य को हड़पने का प्रयत्न किया गया जिसे बीरवर दुर्गादास राठौर ने बड़े ही प्रयत्न से बचाया। जयपुर नरेश मिर्जा जयसिंह की भी वैसी ही दुर्दशा की गयी तथा राजकुमार समेत उसे विष दिलवा कर अन्त्येष्टि करवा दी गई थी। भारत में संभवतः एक भी हिन्दू या भारतीय ऐसा न था जो हृदय से औरङ्गजेब का साथ देना चाहता हो फिर भी बहुत बड़ी संख्या उसकी अनुगामिनी हो रही थी यह राजनीतिक दासता की पराकाष्ठा थी। औरङ्गजेब ने हिन्दुओं पर ही अत्याचार नहीं किये शाह मोहम्मद जैसे सूफ़ी सन्त की अत्यन्त दुर्दशा कर डाली थी और सरमद फकीर को तो शूली ही पर चढ़ा दिया था। शियाओं पर भी भयंकर अत्याचार किये थे। सिक्खों के गुरु तेगबहादुर को भी शूली दे दी थी तथा गुरु गोविन्द-सिंह के दो बच्चों को जिन्दा दीवार में चुनवा दिया था, सतनामी साधुओं का आम कत्ल करवा के उनके वंश-क्षय का ही प्रयत्न किया गया था।

इस प्रकार से इधर तो अत्याचार की पराकाष्ठा में त्रस्त हिंदू जाति किंकर्तव्य विमूढ़, हो रही थी दूसरी ओर उनमें विलास-प्रियता का तीव्र

प्रवाह बह रहा था राजदरबारों तथा बादशाही आम-खास में शृंगारिक भावना का वेग प्रबलता पर था यहीं रीतिकालीन रचना के नाम पर गन्दे से गन्दे और अश्लील साहित्य की सृष्टि हो रही थी। इनके दरबार शृङ्गारी कवियों से भरे पड़े थे जो कि राजाओं-नवाबों तथा सरदारों की चाटुकारी के साथ उन्हें स्त्रैणता के गहरे समुद्र में गोते लगवाने में निरत थे। किसी में भी देश, समाज अथवा राष्ट्र के उत्थान, संगठन तथा मर्यादा-निर्धारण का विचार तक उत्पन्न नहीं हो रहा था। इन्हीं दो चक्कियों के पाटों के बीच में सारा देश बुरी तरह पिसा जा रहा था, मुख्यतया हिन्दू समाज की दशा तो अत्यन्त शोचनीय हो रही थी। फिर भी वह बलिदान के बकरे की भाँति चने की दाली चबाने में ही अपने को गौरवान्वित समझ रहा था। ऐसा क्यों था इस पर आज भी देश और समाज विचार करने को प्रस्तुत नहीं जान पड़ता, और न इतिहास की कड़ियाँ सुलझाने की ही ओर अग्रसर होता दिखलाई देता है।

महाकवि 'भूषण' का जन्म इन्हीं परिस्थितियों में हुआ था। बनपुर अनेक उच्चकोटि के कवियों की जन्म-भूमि थी उन सबमें ही वही रीतिकालीन शृंगारिक भावना का प्राधान्य था। यही नहीं भूषण के बड़े भाई चिन्तामणि तक उसी औरंगजेबी दरबार में स्त्रैण उपासना में लीन थे। अतः भूषण भी रीतिकालीन नायिकाभेद के चक्कर से न बच सके। फिर भी अपने पिता की स्वतन्त्र वृत्ति व दुर्गा जी की उग्र उपासना एवं राजनीतिक घात-प्रतिघातों की थपेड़ ने उन्हें सजग कर दिया तथा गीता के 'धर्म संस्थापनार्थाय' भावानुकूल वे अपना देश-उद्धार-पथ अन्वेषण करने में निरत हुए। अतः इसी भावना ने उन्हें शृंगार रस का परित्याग करके वीर रस की ओर अग्रसर कर दिया, जिससे औरंगजेब की सारी शक्ति क्षीण पड़ गई और राष्ट्र में ऐसा उत्साह एवं ओज तथा उत्तेजना के साथ नवजीवन का संचार हुआ कि जिसकी आशा स्वप्न में भी नहीं की जा सकती थी। यही महाकवि भूषण की महत्ता है जो कि अन्य कवियों से उसे अलग कर देती है।

यहाँ पर यह बतला देना उचित प्रतीत होता है कि औरंगजेब केवल हिन्दुओं का ही शत्रु नहीं था मुसलमानों का भी वैसा ही शत्रु था जैसा कि ऊपर के कथन से स्पष्ट है। वह किसी पर विश्वास नहीं करता था केवल सुन्नी मुसलमानों को अपनी ओर इसलिये मिला रखा था ताकि शासन और साम्राज्य की रक्षा की जा सके। फिर भी अपने स्वार्थ के लिए उन्हें भी नीचा दिखाने में नहीं चूकता था। इसी से वह राष्ट्र का पक्का शत्रु था। भूषण ने इसीलिये उसे प्रतिनायक के रूप में चुना था। अतः भूषण पर न तो साम्प्रदायिकता का दोष लगाया जा सकता है और न जातीय पक्ष पात का। वरन् औरंगजेब की भर्त्सना उन्होंने केवल इसी-लिये की कि वह अत्यन्त तास्सुबी एवं सम्प्रदाय पक्षपाती तथा राष्ट्र व देश का शत्रु था। इसी कारण वह हिन्दुओं को तो नीचा दिखाना ही चाहता था। साथ ही शिया मुसलमानों का विरोध कर सुन्नियों का समर्थन ग्रहण करना मात्र ही उसे अभीष्ट था। दारा को शाहजहाँ का प्रेम प्राप्त था साथ ही हिन्दुओं की सद्भावना में निरत होने से उनका हृदय स्वाभाविक ही उसी ओर आकर्षित हो रहा था, अतः औरंगजेब इन सब लोगों को एक साथ ही निकाल फेंकने के लिये उत्सुक था। ये ही सब कारण थे जिससे वह सबको ही सन्देह की दृष्टि से देखता था। भूषण के हृदय में इसी राजनीति का विश्लेषण व आलोड़न था जिसके प्रतीकार में वे दत्त-चित्त से विचार मग्न थे तथा उन्हें कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न कर रहे थे।

जन्म-काल तथा जन्म-स्थान

महा कवि भूषण के जन्म-काल तथा जन्म-स्थान दोनों ही के बारे में अत्यन्त भ्रम फैला हुआ है। किसी ने यह समय सं० १६७२ वि० तथा किसी ने सं० १६६२ वि० माना था। यह जन्म-काल इसी लिए कल्पित कर लिया गया था ताकि भूषण को शिवाजी का दरबारी कवि ठहराया जा सके। इन साहित्य के इतिहासकारों ने 'शिवसिंह सरोज' के कथन की भी चिन्ता नहीं की जिसकी रचना ही भूषण-मतिराम के सम्बन्ध में फैले भ्रम को दूर करने के लिए हुई थी।[1] उसमें चिन्तामणि का जन्म सं० १७२६ वि० और भूषण का जन्म समय सं० १७३८ वि० वर्णित[2] है। शिवसिंह सेंगर का निवास स्थान कांथा (उन्नाव) भूषण के वास-स्थान तिकमापुर (कानपुर,) से १५-२० मील के ही अन्तर पर है। मतिराम के एक वंशज उक्त सेंगर जी के साथ 'सरोज' रचना में सहायता कर रहे थे। अतः इसकी सत्यता में संदेह नहीं किया जा सकता। इन सब प्रमाणों के साथ स्वयं भूषण के कथन से भी इसकी पुष्टि हो जाती है। इसे आप भूषण के ही शब्दों में अवलोकन कीजिये —

सम[3] सत्रह सैंतीस पर, शुचि वदि तेरसि भान।
भूषण शिव भूषण कियो, पढ़ियो सुनौ सुज्ञान॥

शिवराज भूषण, छन्द ३८०

इसमें श्लेष से भूषण का जन्म काल तथा शिवराज भूषण का निर्माण[4] काल दोनों का ही उल्लेख किया गया है। वे कहते हैं —

---

[1] देशिवसिंह सरोज की भूमिका पृ० १

[2] शिवसिंह सरोज पृ० ४६७

[3] नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित प्राचीन प्रति

[4] भूषण विमर्श पृ० ४५

संवत् १७३७ वि० के पश्चात् अर्थात् सं० १७३८ वि० में आषाढ़ बदी १३ रविवार के दिन देवाधिदेव शिवजी ने भूषण को जन्म दिया। गणित से भी यह तिथि ठीक प्रमाणित होती है। अतः सरोजकार के कथन में कोई सन्देह के स्थान नहीं रह जाता। इसी आधार पर शिवराज भूषण का निर्माण काल सं० १७७३ वि० ठहरता है। अब जन्म-स्थान पर विचार कीजिये। वृत्त कौमुदी में मतिराम ने अपना निवास स्थान बनपुर (जिला कानपुर) बतलाया है इसे कवि के ही शब्दों में अवलोकन कीजिए—

तिरपाठी बनपुर बसै, बत्स गोत्र सुनि गेह।
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह॥[1]

इसमें मतिराम ने अपना स्थान बनपुर बतलाया है इस वृत्त कौमुदी की रचना सं १७५८ वि० में हुई थी। इसके पश्चात् मतिराम के पन्ती कवि बिहारी लाल ने विक्रम सतसई की रत्नचन्द्रिका नामक टीका में अपना निवास स्थान और अपने पूर्वजों के तिकमापुर जा बसने का उल्लेख इन शब्दों में किया है —

बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिन्दी के तीर।
विरच्यौ वीर हमीर जनु, मध्य देश कौ हीर॥
भूषन चिन्तामनि तहाँ, कवि भूषन मतिराम।
नृप हमीर सम्मान तें, कीन्हों निज निज धाम॥[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त तीनों कवि सं० १७५८ वि० तक बनपुर में रहते थे और शिवराज भूषण के निर्माण-काल के अवसर पर

---

[1] वृत्त कौमुदी प्रथम सर्ग छन्द २१

[2] विक्रम सतसई की रसचन्द्रिका टीका प्रथम शतक तथा माधुरी पत्रिका ज्येष्ठ सं० १९८१ वि० शिवराज भूषण, छन्द २६

वे सं० १७७३ वि० से पूर्व तिकमापुर में जा बसे थे। भूषण ने भी इसका उल्लेख किया है—

द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनि तनूजा तीर॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण का जन्म स्थान बनपुर था और फिर निवास स्थान तिकमापुर को बना लिया था।

वंश-परिचय

महाकवि भूषण (मनिराम) का जन्म त्रिपाठी कुल में हुआ था जो कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण कश्यप गोत्र मनोह के तिवारी[1] थे। इनके पिता रत्नाकर बड़े ही सात्विक ब्राह्मण और तपस्वी वृत्ति से समय यापन करते थे। तथा शिव के उपासक होते हुए भी दुर्गा के परम भक्त थे। इसी-लिये वे एक मठिया बनवा कर उसी में ध्यान-मग्न हो दुर्गा सप्तशती के पाठ और दूसरे अनुष्ठानों में निरत रहते थे। संस्कृत के विद्वान होते हुए भी ब्रजभाषा में कविता करना अपना गौरव समझते थे। परन्तु उनकी कविता का कोई उदाहरण अब तक नहीं मिला। रत्नाकर के दो पुत्र थे ज्येष्ठ चिन्तामणि और छोटे मनिराम थे।

चिन्तामणि का जन्म सं० १७२६ वि० में बनपुर में हुआ था। इन्होंने भी संस्कृत साहित्य, कोश और व्याकरण आदि का अच्छा अध्ययन किया था, तथा अलंकार व पिंगल शास्त्र का अध्ययन कर ब्रजभाषा में कविता का अभ्यास करने लगे। उन दिनों बनपुर में अनेक उच्चकोटि के कवि रहते थे अतः उनका प्रभाव इन दोनों भाइयों पर भी बिना पड़े नहीं रहा। फिर पैतृक वृत्ति भी यही बन रही थी।

मनिराम (भूषण) का जन्म सं० १७३८ वि० में आषाढ़ वदी १३ रविवार के दिन हुआ था इस प्रकार से भूषण अपने बड़े भाई चिन्तामणि से नौ वर्ष छोटे थे। चिन्तामणि क्रमशः उत्कर्ष करते हुए औरंगजेब के दरबार में जा पहुँचे थे। परन्तु भूषण की मनोवृत्ति इससे भिन्न पथ का अनुसरण कर रही थी। इन्होंने भी संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया

---

[1] चिन्तामणि कवि कृत रामाश्वमेध की पुष्पिका।

[2] शिवसिंह सरोज पृ० ४१२।

था तथा वेद, कोश, व्याकरण, साहित्य, दर्शन, अलंकार एवं पिंगल शास्त्र का गंभीर अध्ययन के पश्चात् ब्रज-भाषा में कविता करने लगे।

इनकी भावना परिस्थिति के प्रभाव से कुछ प्रतिकार की ओर बढ़ रही थी तथा औरंगजेब के अत्याचारों के कारण ये उससे घोर घृणा करते थे। साथ ही अत्याचार के प्रतिरोध के लिये उत्साह, उत्तेजना, और साहस अपेक्षित था। अतः इन्हें स्वाभाविक ही शृंगार से उपेक्षा होने लगी थी। फिर भी समय के प्रवाह में बहे बिना न रह सके अतः इन्होंने भी कुछ रचनाएँ नायिकाभेद आदि पर रची हैं। परन्तु इनमें भी विशेषता इस बात की पाई जाती है कि गहरा और अश्लील शृंगार उनमें नहीं आने पाया है।

इनके बचपन के संबंध में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं परन्तु उनमें से कोई भी विश्वास के योग्य नहीं है अतः उनकी चर्चा करना यहाँ व्यर्थ प्रतीत होता है। इनके पूर्वजों के बारे में अधिक वृत्त ज्ञात नहीं है और न खोज से ही कुछ पता लग पाया है। इन दोनों भाइयों ने भी इस विषय में कुछ अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया अतः हम भी कुछ वर्णन करने में असमर्थ हैं। फिर भी आश्रयदाता और जन्म-स्थान तथा समय के बारे में जो कुछ ज्ञात हो सका है उसी पर संतोष करना पड़ता है। भविष्य के लिये प्रयत्न जारी रखने की आवश्यकता है।

वास्तविक नाम

हमारे चरितनायक को 'कविभूषण' की उपाधि चित्रकूट नरेश हृदय-राम सुरकी द्वारा मिली थी। अतः 'भूषण' कवि का असली नाम नहीं है जैसा कि स्वयं भूषण के कथन से स्पष्ट है —

कुल सुलंक चित्रकूट पति साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र॥

शि० भू०, छन्द २८

इस असली नाम की खोज में भी विद्वानों ने बहुत-से कुलावे मिलाये, परन्तु सभी असफल हुए। किसी ने इनका नाम मतिराम के वजन पर 'पतिराम' ठहराया किसी ने 'कनौज' और किसी ने कुछ और नाम दिया कोई कोई भूषण ही कवि का मूल नाम मानते हैं। परन्तु ये सब अनुमान अशुद्ध प्रमाणित हुए हैं।

सुरकी वंशावली जो पटेहरा से मिली है उसमें रुद्रराम का नाम प्रथम आता है और हृदय राम का उसके बाद अतः अनुमान से ऐसा प्रतीत होता है कि हृदयराम सुरकी रुद्रराम के पुत्र थे। ऐतिहासिक काल भी इसी से मेल खा जाता है हृदयराम का समय सं० १७५५ वि० के लगभग पड़ता है अतः इसी के आस पास हमारे चरितनायक को 'भूषण' की उपाधि मिली थी।

पं० बद्रीदत्त पांडे कृत कुमाऊँ के इतिहास में एक घटना का उल्लेख मिलता है, उसमें वर्णित है —

"कहते हैं सितारा गढ़ नरेश साहू महाराज के राजकवि 'मनिराम' राजा के पास अलमोड़ा आये थे। उन्होंने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर सुनाया था। राजा ने दस हजार रुपये और एक हाथी इनाम में दिया। वह छन्द इस प्रकार है —

पूरण पुरुष के परम दृग दोऊ जानि,
कहत पुरान वेद बानि जोरि रढ़ि गई।
दिन पति ये निशापति ज्यों,
दुहुन की कीरति दिशानि माँझि मढ़ि गई॥
रवि के करण भये महादानि यह;
जानि जिय आनि चिन्ता चित्त मांझि चढ़ि गई।
तोहि राज बैठत कुमाऊँ श्री उदोत चन्द,
चन्द्रमा की करक करेजेहू ते कढ़ि गई॥"[1]

चूँकि साहू महाराज के दरबारी कवि केवल 'भूषण' ही थे अन्य कोई नहीं, अतः मनिराम हमारे चरित नायक भूषण का ही वास्तविक नाम था। यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है।

भूषण और मतिराम

महाकवि भूषण के भाई कौन-कौन थे यह भी एक विवादग्रस्त विषय है। शिवसिंह सरोज में चिन्तामणि, मतिराम, भूषण और नीलकंठ (जटाशङ्कर) ये चार भाई बतलाये गये हैं। सरोजकार ने चिन्तामणि को बड़ा भाई बतलाया है। अमीरअली बिलग्रामी ने अपने फ़ारसी के ग्रंथ 'तज़किरए सर्व आजाद' में चिन्तामणि को बड़ा भाई मतिराम को मंझला और भूषण को छोटा भाई ये तीन ही भाई लिखे हैं। सूर्यमल ने अपने 'वंशभास्कर' में भूषण को बड़ा भाई चिन्तामणि को मँझला तथा मतिराम को सब से छोटा भाई कहा हैं हिन्दी के इतिहासकारों ने 'सरोज' का सहारा लेकर उक्त चार भाइयों का ही उल्लेख करना ठीक माना है। इस विषय पर उन्होंने कोई ऊहापोह नहीं की। मतिराम के पाँच आश्रयदाता ये हैं —

---

[1] कुमाऊँ का इतिहास, पृ० २०२

[2] भूषण विमर्श, पृ० ७

(१) फतहशाह (श्रीनगर, गढ़वाल नरेश) सं० १७४१ से १७७३ तक

(२) उद्योतचन्द व ज्ञानचन्द (कुमाऊँ पति) सं० १७४५ वि० से १७६५ वि० तक

(३) स्वरूपसिंह बुन्देला (कुंडारपति) सं० १७५८ वि० के लगभग

(४) भगवन्त राय खीची (असोथर नरेश) सं० १७७० वि० से १७९२ वि० तक

इन पाँच आश्रयदाताओं में नं० ३ को छोड़ कर शेष चार आश्रयदाता भूषण के भी हैं। अतः भूषण और मतिराम का समकालीन होना तो निर्विवाद है। अब विचारणीय विषय यह है कि क्या ये दोनों कवि सहोदर बन्धु भी हैं। इस संबंध में उक्त दोनों कवियों के कथनों पर ही विचार करना श्रेयस्कर होगा। मतिराम ने अपने वंश का वर्णन करते हुए निम्न पद्य दिये हैं —

तिरपाठी[1] बनपुर बसैं, वत्सगोत्र सुनि गेह।
विबुध चक्रमणि पुत्र तहं, गिरिधर गिरिधर देह ॥२१
भूमिदेव बलभद्र हुव, तिनहि तनुज मुनिगान।
मंडित पंडित मंडली, मंडन मही महान ॥२२
तिनके तनय उदार मति, विश्वनाथ हुअ नाम।
दुतिधर श्रुतिधरकौ अनुज, सकल गुननिकौ धाम ॥२३
तासु पुत्र मतिराम कवि, निज मति के अनुसार।
सिंह स्वरूप सुजान कौ बरन्यौ सुजस अपार ॥२४

महाकवि भूषण ने अपने वंश का परिचय इन शब्दों में दिया है —

द्विज[2] कनौज कुल कश्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर नगर, तरनि तनूजा तीर॥

---

[1] छन्द सार पिंगल (वृत्त कौमुदी) व खोज रिपोर्ट सन् १९२०-२२ नं० १९

[2] शिवराज भूषण छन्द नं० २६

इन दोनों कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि मतिराम वत्सगोत्री विश्वनाथ के पुत्र थे और भूषण कश्यप गोत्री रत्नाकर के तनय बतलाये गये हैं अतः ये दोनों कवि सहोदर बन्धु कदापि न थे। जब पिता ही दोनों के अलग हैं और गोत्र भी एक नहीं है तब सहोदर बन्धुत्व कैसा! हाँ फूफा-मामा के नाते से बंधु रहे हों तो संभव है। फिर भी दोनों में गहरी घनिष्टता थी इसमें सन्देह नहीं; अतः अन्य समकालीन लेखकों ने यदि बन्धुत्व की कल्पना कर ली हो तो संभव है। परन्तु यथार्थता का अंश इसमें कुछ भी नहीं है।

नीलकंठ (जटाशंकर) के संबंध में तो और भी स्पष्टता है कि वे इनके सहोदर बन्धु न थे। क्योंकि इनके समकालीन साहित्यकारों में से किसी ने इन्हें भूषणादि का सहोदर बन्धु नहीं कहा। अतः चिन्तामणि और भूषण ये ही दो सहोदर बन्धु थे, यह निश्चित है।

यहाँ पर यह बात स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि मतिराम नाम के दो कवि उसी काल में हो गये हैं जिनमें से प्रथम मतिराम अब्दुल रहीम खानखाना, बादशाह जहाँगीर, राजकुमार गोपीनाथ (बूँदी) महाराजा भाऊसिंह (बूँदी) तथा राजा भोगनाथ (जंबू नरेश) के आश्रित थे इन मतिराम का समय द्वितीय मतिराम तथा भूषण से पहले पड़ता है जिनकी शैली, भाव और भाषा सभी में स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। अतः दोनों मतिराम को एक नहीं किया जा सकता। यदि ये एक ही मतिराम हों तो इनका रचनाकाल सं० १६६० वि० से १७९० वि० तक १३० वर्ष का पड़ता है जो कि संभव नहीं है। अतः हम दो[१] मतिराम अलग अलग मानने के लिये बाध्य है।

चिन्तामणि कवि ने पिंगल की रचना सं० १७७९ वि० में की थी इस संबंध में यह दोहार्द्ध नारनौल से प्राप्त पिंगल में दिया हुआ है—

[१] 'भूषण विमर्श' में भूषण-मतिराम शीर्षक पृ० १४ से ३० तक।

"कहत अंक मनि दीप द्वै जानि बराबर लेउ।"

इससे हमें चिन्तामणि और भूषण के समय निर्धारण में अच्छी सहायता मिलती है।❀

❀श्री भालेराव जी को भी यह पिंगल खोज में मिला है उन्होंने इस पिंगल का नाम "छंद सार पिंगल" बतलाया है। लश्कर से मेरे अनुज पं० शिवदयाल दीक्षित द्वारा एक पत्र भेजकर उन्होंने सूचित किया है कि इस पिंगल से भूषण, चिन्तामणि और छत्रपति साहू के संबंधों एवं समय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।—(लेखक)

आश्रयदाता

हमारे चरित नायक महाकवि भूषण ने (राजनीतिक तथा साहित्यिक) दोनों मार्गों का अवलंबन ले रखा था एक ओर तो वे काव्य-रचना द्वारा राज दरबारों, सैनिकों, सरदारों और जनता में उत्तेजना उत्साह और नव-जीवन का संचार कर नवोद्भाविनी स्फूर्ति भरने का प्रयत्न करते थे। दूसरी ओर वे सजीव ओजस्विनी मौखिक वाणी द्वारा तथा राजनीतिक प्रणाली से उत्तेजना भरकर समाज के नेताओं को आलोड़ित करने में लगे थे। इस प्रकार से मौखिक और लिखित दोनों प्रकार से जागृति की जा रही थी। इसका स्वाभाविक प्रभाव पड़ा कि हिन्दुओं में वैराग्य, अनुत्साह, निर्जीवता, अकर्मण्यता एवं मन्दता का जो प्रबल संचार हो रहा था वह दूर हो गया। वे अनुभव करने लगे कि हम भी अपने पुराने गौरव को प्राप्त हो सकते हैं।

इसके साथ ही औरङ्गजेब विरोधी मुसलमान भी हिन्दुओं के सहयोग की इच्छा करके अपने राज्यों को वापिस पाने की अभिलाषा से इनके साथ हो गये थे। इससे स्वाभाविक ही दोनों में राष्ट्र-निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी और अकबर बादशाह द्वारा निर्मित राष्ट्रीय भावना का पुनः विकास होने लगा था। भूषण ने इस महान कार्य के लिये बाबर, हुमायूँ अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ इन पाँचों मुगल बादशाहों का सहारा लिया था जिनकी चर्चा अपनी रचनाओं में उन्होंने बार-बार की है तथा औरङ्गजेब की भर्त्सना करते हुए "बब्बर अकब्बर के विरद बिसारे तैं" जैसी पंक्ति स्थान-स्थान पर आपको उनकी रचनाओं में मिल सकती हैं।

शत्रु पर आक्रमण के समय सन्नद्ध सैनिक समूह के सम्मुख इस महाकवि की उत्तेजक रचनाएं अपनी वाणी द्वारा ऐसी प्रबल आग उनके हृदय में उत्पन्न कर देती थी कि विरोधी दल को कच्चा खा जाने तक

की भावना उनमें पैदा हो जाती थी। उस स्थिति में सैनिकों का शत्रु के सामने से भागना अथवा पैर पीछे रखना कभी संभव ही नहीं था। फिर जो सज्जन स्थायी रूप से उनकी रचना का अध्ययन करते रहते थे उनका तो कहना ही क्या था ? इस प्रकार से सारे देश में उत्साह की एक लहर दौड़ा देना भूषण की रचना का प्रमुख कार्य बन गया था।

इस महान कार्य के लिये वैसा ही प्रबल आदर्श और सजीव देवता भी अपेक्षित था जिसे भूषण ने अनुभूति द्वारा अपने हृदयंगत कर लिया था। वह था हमारा राष्ट्र नायक छत्र पति 'शिवाजी', जिसके प्रबल प्रताप और साहस को देखकर औरङ्गजेब के छक्के छूट. जाते थे। अतः भूषण ने सारे भारत के जन-जन को शिवाजी का प्रतिरूप बना देना चाहा था जिसमें वह बहुत अंश में सफलीभूत हुआ था इसमें सन्देह नहीं। इसके लिये तत्कालीन इतिहास साक्षी है। इस आदर्श की स्थापना करने में भूषण को कितनी सफलता मिली थी इसे भी आप उन्हीं के शब्दों में अवलोकन कीजिये। वे कहते हैं—

नृप समाज में आपनी होन बड़ाई काज।
साहि तनै सिवराज के करत कवित कविराज॥

शि० भू०, पृ० २७८

तथा—

को कविराज सभाजित होत,
सभा सरजा के बिना गुन गाये।

शिवराज भूषण, छन्द १५३

इन कथनों से तत्कालीन स्थिति का कुछ दिग्दर्शन हो जाता है साथ ही यह भी अनुभासित हो जाता है कि भूषण की प्रतिभा ने कितना महत्व पूर्ण कार्य कर डाला था। इस भावना को देश में भरने का कार्य २१५० वर्ष से क्षीण पड़ा हुआ था उसको सजग करके नवजीवन का विस्तार कर देना ही इस रचना की विशेषता है।

शिवराज भूषण के निर्माणकाल तक किन-किन दरबारों में भूषण जा चुके थे इसका उल्लेख स्वयं कवि ने एक छन्द में कर दिया है। वह छन्द यह है—

मोरंग जाहु कि जाहु कुमाऊँ,
सिरी नगरे कि कवित्त बनाये।
बान्धव जाहु कि जाहु अमेरि कि,
जोधपुरै कि चितौरहि धाये॥
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि,
दिल्लीसहु पै किन जाहु बुलाये।
भूषन गाय फिरौ महि में,
बनिहै चित चाहि सिवाहि रिझाये॥

शि० भू०, पृ० २५०

इससे स्पष्ट है कि भूषण कवि मोरंग, कुमाऊँ, श्रीनगर, रीवाँ, जयपुर, जोधपुर, चित्तौड़, कुतुबशाह, और आदिलशाह के वंशजों के दरबारों में जा चुके थे तथा दिल्ली के बादशाह से इन्हें बुलाने का निमंत्रण भी मिल चुका था। इनके अरिरिक्त प्रारंभ में ही चित्रकूट पति हृदयराम सुरकी द्वारा हमारे चरितनायक मनिराम को 'कविभूषण' की उपाधि प्राप्त हो चुकी थी। अतः उक्त दरबारों में उनका आना-जाना निर्विवाद है। शिवराज भूषण का निर्माण सं० १७७३ वि० में हुआ था तथा साहू, बाजीराव पेशवा एवं चिमना जी के दरबारों में रह कर ही शिवराज भूषण की रचना की इसके पश्चात् ये मैंड्र नरेश अनिरुद्ध सिंह, चित्रकूट पति बसंतराय सुरकी, पन्नानरेश छत्रशाल तथा असोथर नरेश भगवन्त राय खीची के भी दरबारों में गये थे। इन सब स्थानों में भूषण का जाना केवल जागरण और संगठन की दृष्टि से ही हुआ था नहीं तो इतने दरबारों में भूषण को जाने की कदापि आवश्यकता न थी। फिर सवाई जयसिंह, छत्रपति साहू और महाराजा छत्रशाल के दरबारों में जाने के बाद मैंड्र आदि छुद्र राज्यों में कोई क्यों मारा-मारा फिरता!

कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द के दान को त्यागते हुए उन्होंने कहा था कि मैं तो केवल यह देखने आया था कि यहाँ तक शिवा जी का यश विस्तृत हुआ है या नहीं और उनकी शैली पर कार्य होता है या नहीं। छत्रशाल को बंगस के आक्रमण पर बाजीराव पेशवा द्वारा सहायता दिलवाना भी उसी लक्ष्य का द्योतक है। इस प्रकार से रचना, वाणी और कार्य द्वारा सभी प्रकार से भूषण की भावना एक ही बात की ओर प्रधावन करती हुई दिखलाई देती है कि देश में राष्ट्रीय जागरण और संगठन को पूर्ण कर दिया जाय और जीवन भर वे इसी की पूर्ति में तन-मन से संलग्न रहे।

भूषण की उपाधि

'शिवराज भूषण' में महाकवि मनिराम ने अपनी उपाधि का भी कथन किया है। वे कहते हैं—

कुल सुलंक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषन पदवी दई हृदय राम सुत रुद्र॥

शि० भू०, छं० २८

अतः मनिराम को 'कवि भूषण' की उपाधि हृदयराम ने दी थी, यह स्पष्ट हो जाता है। 'रीवां राज दर्पण' के पृ० ४६८ पर पवैयों की सूची दी हुई है उसकी तालिका नं० ४ में लिखा है—

"नं० ४ गहोरा परगना (बाँदा) के अधिकारी सुरकी राजा हृदयराम ग्राम संख्या १०४३½ बीस लाख का इलका जो अंग्रेजी राज्य में शामिल हो गया है।"

इस खोज के लिये मुझे पटेहरा (रीवाँ) राज्य की भी यात्रा करनी पड़ी थी जहाँ पर सुरकियों की एक वंशावली भी प्राप्त हुई थी। उसमें रुद्रराव का नाम तो मिलता है परन्तु हृदयराम का नाम उसमें नहीं है।

चित्रकूट की यात्रा में वहाँ के एक वृद्ध सुरकी क्षत्रिय ने बतलाया कि हृदयराम भागलपुर वाली शाखा के पूर्वज थे। हृदयराम के बाद चित्रकूट की गद्दी पर सागरराव अधिकृत हुए प्रतीत होते हैं जो कि रुद्रराव के पुत्र थे। सागर राव के पुत्र बसन्त राय थे जो सं० १७८१ वि० में राज्यच्युत हो गये थे। इनकी भी प्रशंसा में भूषण का एक पद्यांश मिलता है—

"बसन्तराय सुरकी की कहूँ न वाग मुरकी"

छन्दांश भूषण का ही रचा बतलाया जाता है। बसन्तराय का उक्त समय पटेहरा के एक महजरनामे से लिया गया है जो बसन्तराय के पोते रामसिंह

ने बृटिश सरकार को दिया था। इस तारतम्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि हृदयराम और सागर राव भाई-भाई थे। इसी से हृदयराम के पश्चात् सागरराव राजा हुए थे। अतः बसन्तराय से एक पीढ़ी पहले हृदयराम का शासन काल सं० १७५५ वि० के आस-पास पड़ता है। सं० १७६० वि० में चित्रकूट तथा रींवा का राज्य छत्रशाल बुंदेला ने छीन लिया था जिसे इन्होंने स० १७६८ वि० में वापिस ले लिया था। उसी समय हृदयराम को रींवा राज्य की ओर से उक्त इलाका जागीर में मिला था।

भूषण कवि अनुमानतः सं० १७५५ तथा १७६० वि० के बीच किसी समय चित्रकूट गये थे तभी उन्हें उक्त उपाधि हृदयराम ने दी थी। वंशावली तथा महजरनामा दोनों ही इसके साक्षी हैं। इसके पश्चात् इनका राज्य छीने जाने तथा पुनः विजय करने का उल्लेख 'छत्रप्रकाश' तथा अन्य इतिहास ग्रंथों में वर्णित है। हृदयराम और अवधूत सिंह (रीवां नरेश) दोनों ही घनिष्ट मित्र थे तथा दोनों की ही संयुक्त शक्ति और बादशाह की सहायता से भूषण के उत्साह वर्द्धन द्वारा इन दोनों ने अपना अपना राज्य वापिस पाया था। इसके उपलक्ष में जो विजयोत्सव मनाया गया था उसमें महाकवि भूषण भी सम्मिलित हुए थे। 'शिवा बावनी' में भी इन दोनों की प्रशंसा के छन्द भूषण ने साहू को सुनाये थे।

भ्रमण और राज्याश्रय

मोरंग और कुमाऊँ

औरंगजेब के आक्रमणों से यह दोनों राज्य ध्वस्त हो चुके थे और वहाँ के नरेशों को पहाड़ों में शरण लेनी पड़ी थी। अतः शक्ति संवर्द्धन, संगठन, उत्साह और उत्तेजन देने के लिये भूषण ने पहले मोरंग फिर कुमाऊँ की यात्रा की थी। मोरंग के विषय में तो कवि संबंधी विशेष विवरण अभी नहीं मिल पाया है इसके लिये अन्वेषण की अपेक्षा है परन्तु कुमाऊँ जाने का सप्रमाण विवरण प्राप्त है। वहाँ पर उद्योतचन्द्र की प्रशंसा में भूषण ने यह कवित्त कहा था—

पूरण पुरुष के परम दृग दोऊ जानि,
चन्द्रमा की करक करेजहूते कढ़ि गई[1]

कवि द्वारा बतलाये पथ पर चलकर मोरंग नरेश एवं कुमाऊँ के राजा उद्योतचन्द्र ने अपना राज्य फिर वापिस ले लिया था। इस प्रकार से भूषण को सफलता का श्रेय यहीं से प्रारंभ होता है। मोरंग के विषय में इतिहासकार स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हैं कि अलीवर्दी खां नवाब के समय में यह राज्य बंगाल में मिला लिया गया था। अतः औरंगजेब के चंगुल से छुड़ाकर मोरंग नरेश ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। भूषण का उल्लेख भी इसी बात की साक्षी दे रहा है।

उद्योतचन्द्र के दरबार में मतिराम कवि का भी रहना पाया जाता है। जिन्होंने राजकुमार ज्ञानचन्द्र के लिये 'अलङ्कार पंचाशिका' नामक ग्रंथ की रचना की थी। भूषण कवि को उद्योतचन्द्र ने एक हाथी और दस हजार रुपया पुरस्कार दिया था परन्तु दान देते समय राजा के मुख से निकल गया कि "ऐसा दान आप को अन्यत्र नहीं मिला होगा।" इससे

---

[1] महाकवि भूषण, पृ० १२

भूषण रुष्ट हो गये और यह कहते हुए कि "ऐसा त्यागी ब्राह्मण भी आपने न देखा होगा। मैं तो यह देखने आया था कि यहाँ तक शिवाजी का यश विस्तार हुआ है या नहीं और उनकी शैली का निर्वाह कहाँ तक होता है!" इस प्रकार से दान को त्यागते हुए वे गढ़वाल की ओर चले गये। इससे हम भूषण की स्वाभिमान और त्याग की वृत्ति का अनुमान लगा सकते हैं। उस समय तक भूषण को अधिक धन नहीं मिल पाया था तथा वह उनकी प्रारंभिक अवस्था थी। अतः उनका यह त्याग और भी महत्वपूर्ण बन जाता है।

श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहशाह

कुमाऊँ के दान को लात मारकर भूषण श्रीनगर के दरबार में जा पहुँचे। राजा फतहशाह ने इनका अत्यन्त आदर किया। इनके दरबार में अनेक उच्चकोटि के कवि रहते थे। रतन कवि कृत फतहप्रकाश नामक ग्रंथ में महाकवि भूषण के दो छन्द उद्धृत हैं उनको पढ़कर आप उत्साह और आनन्द को अनुभव कीजिये। वे छन्द ये हैं—

लोक ध्रुव लोकहू तें, ऊपर रहैगो भारो,
भानुतें प्रभानि की निधानि आनि आनैगो।
सरिता सरिस सुर सरितै करैगो साह,
हरितें अधिक अधिपति ताहि मानैगो।
ऊरध परारध लौं गिनती गनैगो गनि,
वेदतें प्रमान सो प्रमान कछू जानैगो।
सुयश तें भलो मुख, भूषण भनैगो बाढ़ि,
गढ़वार राज पर राज जो बखानैगो॥

फतहप्रकाश, सर्ग ४, छं० ५६

इस कवित्त में कवि ने फतहशाह की अच्छी प्रशंसा की है। उसने पहाड़ों में गंगा की धारा को सरल और सुचारु रूप दे दिया था इसीलिये उसे हरि रूप बतलाया है वैदिक भावना का अनुगामी होने से उसके

कथन को प्रमाणीभूत कहा है। और अनेक गुणों का समन्वय होने से उसकी महत्ता उच्चकोटि की बतलाई हैं, अन्त में जनता के हृदय में कुछ दुर्भावना राजा के प्रति देखकर वे कहते हैं कि जो कोई गढ़वाल राज्य को शत्रु राज्य समझेगा उसका सुयश नष्ट हो जायगा। इस प्रकार से इस हमारे चरित नायक ने एक ही छन्द में राज्य की सारी धारणा को नया रूप दे दिया और जनता राजा की अटल भक्ति में निमग्न हो गई थी। इसके बाद ही प्रजा के बल पर फतहशाह ने सहारनपुर तक का औरंगजेबी इलाका अपने राज्य में मिला लिया था। इसका इतिहास साक्षी है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यह राजा प्रबल समाज सुधारक और राष्ट्र वादी व्यक्ति था। जिसे भूषण के सहयोग से गहरा बल मिला था।

दूसरा छन्द भी देखिए—

देवता कौ पति नीकौ, पतनी शिवा कौ हर,
श्री पति न तीरथ विरथ उर आनियो।
परम धरम को है सेइबो न ब्रत नेम,
भोग को सँजोग त्रिभुवन जोग जानियो।
भूषन कहा भगति न कनक मनि ताते,
विपति कहा वियोग सोग न बखानियो।
सम्पति कहा सनेह न गथ गाहिरो जहां,
सुखकौ निरखिबोई मुकुति न मानियो* ॥

इस छन्द में कवि ने इन्द्र, महादेव तथा दुर्गा की प्रशंसा करते हुए वैष्णव धर्म, तीर्थ, व्रत, नियमादि को व्यर्थ बतलाया है। साथ ही सांसारिकता की महत्ता दिखलाते हुए तीनों लोकों का उपयोग उचित ठहराया है। सोने एवं मणियों के सहारे की भक्ति को तुच्छ बतलाते हुए विपत्ति, वियोग और शोक को अचिन्तनीय कहा गया है। जहाँ स्नेह नहीं होता

---

*फतहप्रकाश, सर्ग ४, छन्द १६४।

वहाँ पर सम्पत्ति की प्राप्ति तुच्छ ही है, इसी प्रकार से सांसारिक सुखों को मुक्ति का स्वरूप मानना भी ठीक नहीं है। इन उदाहरणों से भूषण की भावना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। साथ ही इसमें कुमाऊँ नरेश के दान के त्याग का कारण भी स्पष्ट कर दिया गया है। इन्हीं में हमें कवि को स्पष्टोक्ति और महत्ता के दर्शन होते हैं।

भूषण में समाज-सुधार, राष्ट्र-निर्माण और सदाचार पूर्ण जीवन की कितनी उत्कट भावना थी इसे हम ऊपर के कथन से भलीभाँति समझ सकते हैं। इसके साथ ही हमें उनकी वाणी के ओजस्वितामय वर्णन, उत्तेजक एवं उत्साह पूर्ण चित्रण तथा आध्यात्मिकता से ओतप्रोत सरस जीवन का भी अच्छा दिग्दर्शन मिल जाता है। इस पहाड़ी यात्रा के पश्चात् वे अपनी जन्म भूमि बनपुर को लौट आये थे। श्रीनगर में भी भूषण का बहुत ही सम्मान हुआ था। तथा राजा फतहशाह ने अच्छी भेंट देकर सप्रेम बिदाई दी थी।

रीवाँ नरेश अवधूतसिंह

बाँधवाधीश अवधूतसिह सं० १७५७ वि० में गद्दी पर बैठे थे। रीवाँ के जागीरदार और चित्रकूट नरेश हृदयराम सुरकी ने ही मनिराम को 'कवि भूषण' की उपाधि दी थी। इससे इन दोनों में काफी घनिष्ठता बढ़ गई थी। जब रीवाँ और चित्रकूट दोनों राज्य महाराजा छत्रशाल से अपना राज्य वापिस लेने में प्रयत्नशील थे तभी दोनों की शक्ति को उत्कर्ष और संगठित रूप देने में भूषण ने भी अपनी वाणी का उपयोग किया था। सं० १७६० वि० में उक्त दोनों राज्य छीन लिये गये थे जिन्हें सं० १७६८ वि० में ८ वर्ष तक कठिन परिश्रम करके दिल्ली नरेश तथा राजा प्रताप गढ़ की सहायता से पुनः प्राप्त कर सके थे। इस युद्ध यात्रा के समय हृदयराम की सेना के सम्मुख भूषण ने यह छन्द सुनाया था—

बाजि बंब चढ्यौ साजि बाजी जब कला भूप,
गाजी महाराज राजी भूषण बखानते।

चंडी की सहाय महिमंडी तेज ताई ऐंड़,
छंडी राय राजा जिन दंडी औनि आनते।
मंदी भूत रवि रज बंदी भूत हठ धर,
नन्दी भूत पति भौ अनन्दी अनुमान ते।
रंको भूत दुवन करं की भूत दिगदन्ती,
पंकी भून समुद सुलंकी के पयान ते।*

इस विजय यात्रा से रीवाँ राज्य, तरौंहा और चित्रकूट राज्य में उत्साह का पारावार लहराने लगा था। भूषण की उत्तेजनात्मक तथा उत्साह पूर्ण रचनाओं ने सजीवता की एक लहर सैनिकों के हृदयों में दौड़ा दी।

अवधूत सिंह की सेना के सामने जो कवित्त भूषण ने सुनाया था उसने तो उन में जोश का एक उबाल ही ला दिया होगा।

देखिए कैसा ओजस्वी कथन है—

जादिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
तादिन दिगन्त लौं दुवन दाटियतु हैं।
प्रलै कैसे धाराधर धम कैं नगारा धूरि,
धारा तैं समुद्रन की धारा पाटियतु है।
भूषन भनत भुव डोल कौ कहर तहाँ,
हहरत तगा जिमि गज काटियतु है।
कांच से कचरि जात सेस के असेस फन,
कंमठ की पीठि पै पिठी सो बांटियतु है।

यह रचना कितनी उत्तेजक और सजीव है इसे उत्साही वीर ही अनुमान लगा सकता है। पुरुषत्व हीन, जीवन तत्व से रहित प्राणी इसके

*समालोचक, भाग १, अंक १, पृ० ६८, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १३ अंक १-२ तथा 'रीवाँ राज्य दर्पण' पृ० ४६८।

आनन्द को क्या अनुभव कर सकता है! युद्ध यात्रा के अवसर पर तेग युक्त सैनिक ही इसकी महत्ता समझ सकता है जिस पर भूषण जैसे प्रतापी कवि की वाणी पाकर जो भाव उन में भर दिये गये होंगे वह वाणी से कथन की वस्तु नहीं रह जाती। हृदय ही उसकी सत्ता को उचित मान दे पाया है। भूषण की रचना का एक एक शब्द वीर रस की साक्षात प्रतिमा बन जाता है। इसमें सन्देह नहीं। भाषा और भाव व्यंजना दोनों ही एक दूसरे की स्पर्द्धा करते से जान पड़ते हैं। इस रचना में जैसा उत्तेजना पूर्ण वीर रस का परिपाक हुआ है वैसा अन्यत्र शायद ही कहीं दृष्टि गोचर हो सके।

राजस्थान का भ्रमण

भूषण कवि का संगठन कार्य चल ही रहा था कि उसको विस्तार देने के लिये वे राजस्थान की ओर चल पड़े। सबसे प्रथम उन्होंने जयपुर पहुँच कर सवाई जयसिंह से भेंट की। जयपुर नरेश बड़े ही प्रतिभा सम्पन्न, उद्योगशील, देशोत्थान की भावना रखने वाले समाज-सुधारक व्यक्ति थे। भूषण को ऐसे उच्चकोटि के नरेश से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। जयपुर नरेश भी ऐसे महान राष्ट्रीय कवि, देशोद्धारक, प्रतिभावान व्यक्ति को पाकर मुग्ध हो गये। दोनों का मिलन सोने में सुगंध का मिश्रण बन गया। भूषण ने उत्तरी भारत के नेतृत्व की बागडोर जयपुर नरेश के हाथ में दे दी। भूषण कवि जयपुर नरेशों के राष्ट्रीय विचारों और कार्यों से पूर्ण परिचित थे उसी को आधार बना कर हमारे चरितनायक ने जयसिंह की इन शब्दों में प्रशंसा की है अवलोकन कीजिये—

अकबर पायो भगवन्त के तनै सों मान
**　　　　बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों।**
'भूषण' त्यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों,
**　　　　शाहजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों।**

अब औरंगजेब पायो रामसिंह जू सों,
औरहू दिन दिन पैहैं कूरम के माने सों।
के ते राव राजा मान पावैं पात साहन सों,
पावै बादसाह मान मान के घराने सों।

इस छन्द में महाकवि भूषण ने सवाई जयसिंह के पूर्वजों का चित्रण कर यह दिखला दिया है कि जयपुर वंश से मुगल बादशाहों का कितना अधिक महत्व बढ़ गया था। साथ ही रावराजा का उल्लेख कर बूँदी नरेश की तुच्छता भी दिखला दी है जो कि जयपुर राज्य के प्रबल विरोधी थे। इससे हम भूषण के राजनीतिक चातुर्य, कार्य दक्षता एवं व्युत्पन्न मतित्व का अच्छा आभास पाते हैं। इस छन्द से उनके राष्ट्रीय संगठन, हिन्दू-मुसलिम मेल तथा समाज-सुधार की विचारधारा की पुष्टि होती है जो कि महाराजा मानसिंह के सहारे से स्थापित की गई थी। ये पहले भारतीय नरेश थे जिन्होंने अकबर बादशाह से विवाह संबंध कर के राष्ट्रीयता की जड़ जमाई थी। उसी का उल्लेख इस कवित्त में किया गया है।

अब सवाई जयसिंह की विशेषताओं पर भी ध्यान दीजिये जिन्हें इस महाकवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

भले भाई भासमान भासमान भान जाको,
भानत भिखारिन के भूरि भयजाल है।
भोगन कौ भोगी भोगीराज कैसी भातिभुजा,
भारी भूमि भार के उबारन कौ ख्याल है।
भावतो सभानि भूमि भामिनी कौ भरतार,
भूषण भरतखंड भरत भुआल है।
विभौ कौ भंडार औ भलाई कौ भवन भासै,
भाग भरे भाल जयसिंह भुवपाल है॥

इस प्रकार से सवाई जयसिंह के कार्यों में वेधशाला निर्माण, बूँदी राज से अपने राज्य को वापिस लेने, जयपुर नगर निर्माण करने, तथा अत्यन्त ऐश्वर्यशाली होने का कवि ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग

से चित्रण किया है। उसे भरतखंड के निर्माता भरत के रूप में अंकित किया है। इस प्रकार से भूषण और जयसिंह में एक गहरी मित्रता हो गई थी। यही नहीं भारत के महान पंडितों द्वारा राष्ट्रीय व्यवस्था दिलवा कर मस्तानी-पेशवा के विवाह को जयपुर नरेश द्वारा ही उचित ठहराया गया था। इसके पश्चात् महाकवि भूषण जोधपुर गये थे परन्तु जोधपुर नरेश की मनोवृत्ति औरंगजेब की दासता की ओर झुकी थी। अतः भूषण से उनका मन न मिल सका और वे वहाँ से उदयपुर को चल दिये। राणा उदयपुर ने इनका बहुत सम्मान किया और वे सवाई जयसिंह के सहयोगी बन गये। इस तरह वे राजस्थान का दौरा समाप्त कर अपनी जन्मभूमि को लौट आये। जोधपुर नरेश के विरोध के कारण ही भूषण ने शिवराज भूषण में जसवन्तसिंह की निन्दा की है और उन्हें 'गीदड़' तक कह डाला है, यथा—

"जाहिर है जग में जसवन्त लियो गढ़ सिंह में गीदड़ बानो।"

भूषण ग्रंथावली, पृ० ११४

इसके विपरीत राणा जयसिंह का ध्यान करके अमरसिंह चन्दावत के विषय में भूषण कहते हैं—

"हिन्दू बचाय बचाय यही, अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण की भावना किस प्रकार से राष्ट्रीय संगठन में व्यस्त थी।

राजस्थान से लौट आने पर बनपुर में निवास करना भूषण ने सुरक्षित नहीं समझा। अतः वे बनपुर से तिकमापुर (कानपुर) चले आये इनके साथ ही चिन्तामणि और मतिराम भी यहीं आ बसे थे। तीनों कवि अपनी-अपनी हवेलियाँ बना कर आनन्द पूर्वक निवास करने लगे थे। इन हवेलियों के भग्नावशेष आज भी उन महाकवियों की स्मृतियों को ताजा कर देते हैं।

दक्षिण की यात्रा

महाकवि भूषण ने १२-१३ वर्ष तक उत्तरी भारत में संगठन-कार्य

किया। औरंगजेब के दक्षिण में व्यस्त रहने के कारण उन्हें उत्तरी भारत में अच्छी सफलता मिली थी और अनेक राजाओं को पथ-प्रदर्शन देकर उत्कर्ष की ओर अग्रसर करते हुए संगठन की शक्ति को प्रबलतर रूप दे दिया था। इसी बीच अनेक प्रकार की असफलताओं के कारण औरंगजेब का हृदय टूट गया था। वृद्धावस्था से कार्य की क्षमता भी जाती रही थी। इसी से सशंकित एवं भयत्रस्त रह कर सभी को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा था अन्त में संवत् १७६४ वि० में दक्षिण में ही वह परलोक सिधारा। छत्रपति साहू को अपनी मृत्यु से पूर्व ही उसने जेल से मुक्त कर दिया था। अतः वे धूमधाम से सितारा में सवत् १७६५ वि० में सिंहासनासीन हुए।

इन्होंने बालाजी विश्वनाथ को अपना पेशवा (मंत्री) बनाया जिसने बड़ी दक्षता से शासन का कार्य-संचालन किया। इसके बड़े बेटे बाजीराव भी उसे शासन में अच्छी सहायता देते थे। भूषण ने सितारा जाते हुए गोलकुंडा और बीजापुर के शीया राजकुमारों से भी भेंट की थी और उन्हें भी अपने संगठन में सम्मिलत कर लिया था जिसका उल्लेख कवि ने अपने शिवराज भूषण के छन्द सं० २५० में भी किया है।

यहाँ से चल कर भूषण सितारा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर राजकीय मंदिर में अपने डेरे डाल दिये। रात के समय छत्रपति साहू शिकार से लौट कर उसी मन्दिर पर आ पहुँचे। साहू और भूषण में बातचीत होने लगी। साहू को जब ज्ञात हुआ कि ये कवि हैं तो अपनी रचना सुनाने के लिये इनसे अभ्यर्थना की गई। महाकवि भूषण ने सबसे पहले यह छन्द सुनाया—

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सु अम्भ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।
पौन बारि बाह पर शंभु रति नाह पर,
ज्यों सहस्र बाहु पर राम द्विज राज है।

दावा द्रुम दंड पर चीता मृग झुण्ड पर,
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर शेर शिवराज हैं।

एक तो भूषण की वर्णन शैली बहुत ही आकर्षक एवं हृदय-ग्राही थी उस पर अपने पूर्वजों की प्रशंसा से वे मुग्ध हो गये और बराबर सुनाने के लिये आग्रह करते गये। भूषण भी बड़े प्रेम से ओजस्विनी भाषा में कवित्त पर कवित्त और दूसरे छन्द सुनाते गये यहाँ तक कि ५२ कवित्त भूषण ने सुना डाले जिन्हें सुनकर सभी सरदार और साहू तन्मय हो झूमते जाते थे। उत्तर भारत में १८-२० वर्ष लगातार कैद रहने तथा शाही दरबार की साहित्यिक शिक्षा के प्रभाव से साहू जी हिन्दी भाषा से भलीभाँति परिचित थे। अन्त में और सुनाने का आग्रह देखकर भूषण ने कहा कि अब छत्रपति के लिये भी कुछ रख छोड़ें या आप को ही सब सुना दें अतः साहू और अन्य सरदारों ने भूषण की प्रशंसा करते हुए विदाई ली और प्रातः दरबार के समय आने का आमंत्रण करते गये। जब दूसरे दिन वे दरबार में पहुँचे तो रात वाले सज्जन को ही गद्दी पर अधिष्ठित देखकर दंग रह गये। उस समय छत्रपति साहू ने उनसे कहा कि मैंने कल ही निश्चय कर लिया था कि आप जितने छन्द सुनावेंगे उसी के अनुसार आपको पुरस्कार दूँगा अतः उन्हें ५२ गाँव ५२ हाथी, ५२ लाख रुपये, ५२ शिरोपाव आदि भेंट में दिये गये। इसे पाकर भूषण कृत-कृत्य हुए और दरबारी कवि की हैसियत से वहीं रहने लगे। ये ही ५२ छन्द शिवा बावनी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें से पाँच छन्द छत्रपति साहू, हृदयराम सुरकी, बाजीराव पेशवा तथा रीवाँ नरेश अवधूतसिंह की प्रशसा में थे तथा अनेक छन्दों में ऐतिहासिकता का रूप साहू के समय का है परन्तु वे शिवाजी की प्रशंसा में कहे गये हैं। जैसा कि कुछ छन्दों में शिवाजी की विजय रूप से उज्जैन, भेलसा, और सिरोंज में मरहठों की छावनी डाले जाने का उल्लेख है परन्तु ये घटनाएं साहू और बाजीराव

पेशवा से संबंध रखती हैं। इससे हम सरलतया यथार्थता का अनुमान लगा सकते हैं। छत्रपति साहू की प्रशंसा में यह कवित्त उपस्थित है—

बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारै,
काबुल पुकारै कोऊ धरत न सार है।
रूम रूदि डारै खुरासान खूँदि मारै,
खाकखादर लौं झारै ऐसी साहू की बहार है।
सक्खर लौं भक्खर लौं मक्कर लौं चले जात,
टक्कर लिवैया कोऊ वार है न पार है।
भूषन सिरोंज लौं परावने परत फेरि,
दिल्ली पर परत परंदन की छार है।

शि० बा० ४९

इस छन्द में मरहठों का प्रभाव कितना विस्तृत हो गया था इसका अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से कवि ने चित्रण किया है। अब बाजीराव पेशाव के संबंध में भी एक कवित्त इसी शिवा बावनी से अवलोकन कीजिए—

सारस से सूबा कर बानक से साहजादे,
मोर से मुगल मीर धीर में धँचै नहीं।
बगुला से बंगस बलूचिये बतक ऐसे,
काविली कुलंग याते रन यें रचै नहीं।
भूषण जू खेलत सितारे में शिकार साहू,
संभा कौ सुअन जाते दुअन बचै नहीं।
बाजी राव बाज की चपेटैं चंगु चहूं ओर,
तीतर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं।

शि० बा० छन्द ४८

इस छन्द में भूषण ने बाजीराव पेशवा की तुलना बाज से करके औरङ्गजेबी सरदारों को अन्य पक्षियों के रूप में कथन किया है इस प्रकार से पेशवा की महत्ता व्यक्त करते हुए मरहठों के शासन और प्रभाव के विस्तार का भली प्रकार से चित्रण कर दिया है। इस कवित्त में कवि की

मौलिकता के साथ उत्तेजक भावना भी पर्याप्त मात्रा में भरी हुई है। जिसे वह मरहठों में भर देना चाहता है ताकि दिल्ली की साम्राज्यशाही को ध्वस्त किया जा सके। इन्हीं दिनों में साहू की आज्ञा से भूषण ने शिवराज भूषण की रचना की थी। फिर वहाँ से लौटकर तिकमापुर चले आये थे।

यहाँ से वे दिल्ली नरेश से मिलने को चल दिये और बूंदी के हाड़ा नरेश बुद्ध सिंह, दिल्ली के बादशाह और मैंडू के राजा अनिरुद्ध सिंह से मिल कर तथा सम्मानित होकर अपने निवास स्थान को लौट आये थे। इन लोगों की प्रशंसा के छन्द भी पाये जाते हैं जिनसे विदित होता है कि भूषण का इन स्थानों पर काफी अच्छा सम्मान मिला था। बादशाह की ओर से इन्हें यशोहरा (जिला मेरठ) नामक ग्राम पुरस्कार में मिला था जिसे परेलिया (जिला हरदोई) के पाठक उपयोग कर रहे हैं। उस गाँव के वाजीबुल अर्ज में कवि का नाम मनिराम बतलाया गया है परन्तु इसका मैं स्वयं निरीक्षण अब तक नहीं कर पाया हूं।*

पौरच नरेश अनिरुद्ध सिंह के दरबार में मैंडू (हाथरस के पास एक साधारण नगर) जाने के विषय में भूषण के सौ वर्ष पश्चात् भी वहाँ के दरबारी कवि जयराम बड़ी श्रद्धा से अपनी रचना में उल्लेख करते हैं; देखिए—

भूषनादि कवि आइ कैं, पायौ बहु सम्मान।
जस बरनन जिन कौ कियौ बहु कवि जान जहान॥

यह कृष्ण जन्म खंड जिसमें उक्त उद्धरण आया है सं० १८६७ वि० में लिखा गया था। जब कि अनिरुद्ध सिंह की मृत्यु सं० १७७३ वि० के कुछ काल पश्चात् ही हो गई थी। इन बातों से यह बात विदित होता है कि छत्रपति साहू, सवाई जयसिंह तथा दिल्ली के बादशाह से सम्मान पाने

*परेलिया के पाठक भूषण को पाठक मानते हैं इसका एक वंश-वृक्ष भी उन्होंने तय्यार कर लिया है जो कि नितान्त कल्पित है। दे० भूषण विमर्श की प्रस्तावना, पृ० २३।

पर भी भूषण कवि मैडू जैसे छोटे जागीरदारों के यहाँ जाने में भी नहीं हिचकते थे। इसी से उनका संगठन सफल और जोरदार था। राष्ट्रीय संगठन के लिए इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। भूषण की प्रतिष्ठा इतनी अधिक बढ़ गई थी कि छोटे-बड़े राजा महाराजा सभी उनको बुला कर अपने को गौरवान्वित मानते थे। यहाँ तक कि उन के १०० वर्ष पश्चात् भी उनके नाम को लोग आदरणीय मान कर उल्लेख करते थे।

भगवन्तराय खीची

सं० १७७० वि० के पश्चात् ही असोथर नरेश भगवन्तराय खीची ने अपना राज्य विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया था। खीची के आमंत्रण पर ही भूषण असोथर गये थे। प्रारम्भ में खीची की जागीर ३५० रु० वार्षिक आय की थी। परन्तु भूषण के प्रोत्साहन से इसने पूरा लाभ उठाया और थोड़े काल में ही अपना राज्य विस्तार इतना अधिक कर लिया था कि उससे करोड़-डेढ़ करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती थी। बनपुर असोथर के समीप होने से उक्त खीची नरेश अपने शासन के प्रारम्भ में ही भूषण के सम्पर्क में आ गए थे। खीची स्वयं अच्छा कवि था और बहुत से कवियों का आश्रयदाता था। अनेक उत्तम कवि उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। भूषण का आना-जाना था ही। इसी से दोनों में प्रगाढ़ मैत्री हो गई थी। जब खीची ने कोड़ा जहानाबाद का विजय किया और वहाँ के मुसलमान सूबेदार को मार कर किले पर अधिकार कर लिया उस समय सूबेदार की १५ वर्षीया लड़की लूट में मिली थी। भूषण की सलाह से खीची ने उसका विवाह अपने राजकुमार रूप सिंह के साथ कर लिया था। इससे दोनों की समाज-सुधारक-भावना का भी अच्छा परिचय मिल जाता है। जब संवत् १७९७ वि० में भगवन्तराय खीची नवाब सहादत खाँ से युद्ध करते हुए मारे गए थे तो भूषण को महान दुख हुआ था उस समय के दो छन्द इस महाकवि के रचे मिलते हैं। उनमें से एक यहाँ उद्धृत है—

उठि गयो आलम सों रुजुक सिपाहिन कौ,
उठिगौ बँधैया सबै वीरता के बाने कौ।
भूषन भनत उठि गयो है धराते धर्म,
उठिगौ सिंगार सबै राजा राव राने कौ।
उठिगौ सुकवि सील उठिगौ जसीलौ डील,
फैलौ मध्य देश में समूह तुरकानै कौ।
फूटे भाल भिच्छुक के जूझे भगवन्त राय,
अरराय टूट्यौ कुल खंभ हिन्दुआने कौ।

कैसी हृदय ग्राहिणी और मर्मवेधी रचना है! इसे पढ़कर किसका हृदय ऐसा है जो द्रवीभूत न हो इसके एक-एक शब्द से मर्म वेदना फूटी पड़ती है!! इन छन्दों से खीची के उत्कर्ष, उदार भाव, उत्साह एवं महत्ता का अच्छा परिचय मिलता है। भूषण की इसी विशेषता ने उन्हें इतना गौरव प्रदान किया था। इस युद्ध में भी खीची ने अच्छा वीरत्व प्रदर्शन किया था और हरावल को छिन्न-भिन्न कर उसके सेनापति अबूतुराव खाँ का बध कर डाला था। इसी आतंक से सशंकित हो सहादत खाँ हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हो सेना के बीच में चला गया था। खीची की सेना केवल ३००० थी जब कि नवाब के पास ५०००० सेना दल था। भूषण को इस घटना से महान दुख हुआ था जैसा कि उक्त कवित्त से स्पष्ट है।

छत्रपति छत्रसाल

महाराज छत्रसाल बुँदेला ने शिवाजी की शिक्षा मान कर स्वराज्य स्थापन का आयोजन किया। उन्होने बुँदेलखंड में औरङ्गजेबी सेना से अनवरत युद्ध करके अपनी छोटी-सी जागीर को एक विस्तृत राज्य के रूप में परिणत कर दिया था। परन्तु सं० १७८० वि० के लगभग मोहम्मद खां बंगस ने पन्ना राज्य पर आक्रमण कर दिया। महाराजा छत्रसाल अति वृद्ध हो गये थे। उनके पुत्रों में कोई भी योग्य न था।

अतः वे इस आक्रमण को न सम्हाल सके और किले में बैठकर आत्म-रक्षा करते रहे।

अन्त में जब कोई उपाय चलता न देखकर भूषण महाकवि से सहायता की याचना की। ये तुरन्त दक्षिण की ओर चल दिये पूना पहुँच कर छत्रसाल की ओर से बाजीराव पेशवा से यह प्रार्थना की—

"जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति मेरी आज।
बाजो जात बुंदेल की, राखौ बाजी लाज॥"

अन्त में भूषण ने बाजीराव पेशवा को सहायता देने के लिये राजी कर लिया तथा मरहठों की एक सुशिक्षित एवं मँजी हुई सेना के साथ पेशवा को अपने साथ बुँदेलखंड में लिवा लाये। पेशवा ने झाँसी में अपना कैम्प स्थापित किया फिर व्यूह रचना कर एक ओर से मरहठों ने और दूसरी ओर से बुँदेलों ने बंगस पर हमला बोल दिया। बंगस मरहठों के आक्रमण को सहन न कर सका और मैदान छोड़ भागा। और उसकी सेना तितिर बितर हो गई। इस प्रकार से विजय श्री बाजीराव पेशवा के हाथ लगी। उस समय भूषण ने पेशवा की प्रशंसा में यह छन्द सुनाया—

बाजे बाजे राजे से निवाजे हैं नजरि करि,
बाजे बाजे राजे काढ़ि काटे असि मत्ता सों।
बांके बांके सूबा नाल बंदी दै सलाह करैं,
बांके बांके सूबा करे एक एक लत्ता सों।
गाढ़े गाढ़े गढ़ पति काढ़े राम द्वार दै दै,
गाढ़े गाढ़े गढ़पति आने तरैं कत्ता सों।
बाजीराव गाजी ने उबार्‌यौ आइ छत्रसाल,
आमिल बिठायौ बल करि कैं चकत्ता सों।

भू० ग्रंथावली, फुटकर छन्द ४१

युद्ध की समाप्ति पर महाराजा छत्रसाल ने भूषण की सलाह से अपनी कन्या मस्तानी का विवाह बाजीराव पेशवा से कर दिया और अपना एक

तिहाई राज्य दहेज में दे दिया। मस्तानी मुसलमान वेश्या से उत्पन्न हुई थी। यह एक अत्यन्त वीराङ्गना, युद्धकला में दक्ष और सौन्दर्यशालिनी विदुषी थी। इसके चातुर्य और रूप-लावण्य की प्रशंसा सारे भारत भर में व्याप्त थी। यह शस्त्र-संचालन, गान-विद्या एवं चित्रकला आदि गुणों में भी अत्यन्त पारंगत थी। पेशवा ने ऐसी रमणी रत्न को पाकर अपने को कृत-कृत्य समझा इसके पश्चात् महाराजा छत्रशाल और महाकवि भूषण ने सानन्द सप्रेम पेशवा को विदा किया अब छत्रसाल ने महाकवि भूषण को सम्मानार्थ अपने दरबार में बुलाया। भूषण पालकी में सवार जा रहे थे और उनका नाती आगे-आगे घोड़े पर जा रहा था। महाराज छत्रसाल पेशवाई के लिये आगे बढ़े। नाती को सजे-सजाये हाथी पर सवार कराके स्वयं महाकवि भूषण की पालकी में एक कहार को हटा कर उसकी जगह लग गये यह देखते ही भूषण तुरन्त पालकी से कूद पड़े और ये छन्द उनकी प्रशंसा में सुनाये—

दोहा—नाती को हाथी दयो, जापै ढुरकत ढाल।
साहू के जस कलस पर, धुज बांधो छत्रसाल॥

कवित्त—राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।
साजि साजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ, अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

इस प्रकार से भूषण ने महाराजा छत्रसाल की प्रशंसा में १०-१२ कवित्त सुनाये जिनकी तुलना में अन्य छन्द बहुत कम प्रभावशाली दिखलाई देते हैं।

भूषण की इस सहायता में एक अत्यन्त उदार भावना मिश्रित है जिसकी ओर ध्यान दिलाना उचित प्रतीत होता है। भूषण के आश्रयदाता हृदयराम

सुरकी तथा अवधूत सिंह का राज्य छत्रसाल ने छीन लिया था जिसे वे भूषण की सहायता से ही ले पाये थे अतः छत्रसाल के प्रति उनके हृदय में कुछ विरोध होना स्वाभाविक है। परन्तु इतना होते हुए भी भूषण से सहायता की याचना करने पर व्यक्तिगत द्वेष को भुला कर वे सहायता दिलाने को दक्षिण में जा धमके थे। इससे हम सरलतया उनकी राष्ट्रीय भावना एवं उदाराशयता का अनुमान लगा सकते हैं। भूषण ने कुछ दिनों तक बड़े प्रेम से वहाँ निवास किया फिर सप्रेम बिदा हो तिकिमापुर को चले आये थे। इस प्रकार से भूषण के कार्यों का क्षेत्र कई मार्गों में विभाजित था। संगठन, उत्तेजन, उत्साह, और सदाचारिक भावनाओं का विस्तार उनका प्रमुख लक्ष्य था। साथ ही औरंगजेबी अत्याचारों से मुक्ति दिलाना जो कि औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् भी उसके सरदारों द्वारा अंशतः चलते रहे थे।

भूषण विषयक खोज में दो व्यक्तियों के नाम और मिलते हैं जिनके यहाँ इस कवि के जाने के प्रमाण मिलते हैं। प्रथम चिमनाजी (चिन्तामणि) बाजीराव पेशवा के छोटे भाई और दूसरे बसन्तराय सुरकी चित्रकूटपति जिनका राज्य अवध के नवाब ने छीन लिया था। इन में वसन्ताराय* सुरकी के लिए "बसन्तराय सुरकी की कहूँ न बागमुरकी" पद्यांश भूषण का रचा बतलाया जाता है।

इनके अतिरिक्त उदयपुर राणा जयसिंह, जोधपुर नरेश अजीत सिंह मोरंग नरेश, तथा बीजापुर एव गोलकुंडा नरेशों के वंशजों के लिये भूषण ने कुछ प्रशंसात्मक छंद अवश्य रचे होंगे जिनके यहाँ जाने का उल्लेख कवि ने स्वयं किया है। परन्तु अब तक इनके संबंध के कोई छन्द प्राप्त नहीं हो सका है और न उक्त सुरकी विषयक छन्दाँशाही पूरा हो पाया है। इसी प्रकार से बादशाह मोहम्मद शाह के लिये भी कोई छन्द प्राप्त

*देखो, सुधा वर्ष ३ खंड १ सं० ५ पृ० ५३०

नहीं है अतः भूषण विषयक खोज अभी बहुत अपूर्ण है। आशा है हिन्दी प्रेमी समाज इसकी पूर्ति अवश्य करने का प्रयत्न करेगा।

आश्रयदाताओं की सूची

(१) चित्रकूटपति हृदयराम सुरकी वि० सं० १७५०-५६ तक[१]
(२) कुमाऊँ नरेश उद्योतचंद्र वि० सं० १७३१-५५ तक[२]
(३) श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहशाह वि० सं० १७४१-७३ तक[३]
(४) रीवांधिपति अवधूत सिंह वि० सं० १७५७-१८१२ तक[४]
(५) जयपुर नरेश सवाई जयसिंह वि० सं० १७५६-१८१२ तक[५]
(६) सितारा नरेश छत्रपति साहू वि० सं० १७६५-१८०५ तक[६]
(७) बूँदी नरेश रावराजा बुद्धसिंह वि० सं० १७६४-६८ तक[७]
(८) दिल्ली नरेश जहांदर शाह वि० सं० १७६९[८]
(९) मैंडू नरेश अनिरुद्ध सिंह पौरच वि० सं० १७७० के लगभग[९]
(१०) असोथर नरेश भगवन्तराय खीची वि० सं० १७७०-९७ तक[१०]
(११) बाजीराव पेशवा वि० सं० १७७७-९७ तक[११]
(१२) चिमना जी चिन्तामणि वि० सं० १७८० के आसपास[१२]

[१]. सुधा वर्ष ३ खंड १ सं० ५ पृ० ५३२ [२]. कुमाऊँ का इतिहास पृ० २९६ [३]. गढ़वाल गज़ेटियर पृ० १८८-९ [४]. इम्पीरियल गज़ेटियर जिल्द २१ पृ० १८२ तथा रीवां राज्य दर्पण [५]. टाड राजस्थान भाग १ पृ० २८८-२९८ तक [६]. पारसनीस का मराठा इतिहास, भाग १ पृ० ११७

[७]. टाड राजस्थान पृ० ३१०-३१४ तक [८]. माधुरी, असाढ़ सं० १९८१ वि०; इलियट हिस्ट्री जिल्द ७ पृ० ४६२ [९]. अलीगढ़ गज़ेटियर का इतिहास भाग तथा माधुरी, चैत्र १९९० वि० [१०]. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १ अङ्क १ एवं भगवतन्राय रासा पृ० १ [११]. मराठा पीपिल पृ० २६२ और डफकृत मराठा इतिहास भाग एक पृ० ७५६ [१२]. ग्रांट डफकृत मराठा इतिहास भाग १ पृ० ४२७ तथा ५०३ और भाग २ पृ० ४५६

(१३) चित्रकूट पति बसन्तराय सुरकी वि० सं० १७८० के लगभग[1]
(१४) पन्ना नरेश छत्रशाल वि० सं० १७२८-६१ तक[2]

इस से स्पष्ट है कि भूषण का कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत था और सारे भारतवर्ष में संगठन के लिए बराबर चक्कर लगाते रहते थे। इसके अतिरिक्त सहायतार्थ राजदूत का भी कार्य करते थे छत्रसाल के लिये पेशवा के यहाँ दौड़े जाना इसी बात को सूचित करता है। मस्तानी के लड़कों को समाज में लेने के लिए सवाई जयसिंह से एक पंडितों की सभा कराके व्यवस्था दिलवाई थी।

मालवा की सूबेदारी तथा साहू का अधिकार स्थापित कराने के लिए पेशवा वाजीराव और सवायी जयसिंह के बीच बातचीत का दौर भूषण की मध्यस्थता में उन्हीं के द्वारा हुआ था। हिन्दू-मुसलमान विवाह परस्पर में स्थापित कराना भूषण की प्रमुख योजना थी जिस पर उन्होंने अपना कार्य क्रियात्मक रूप में आगे बढ़ाया था। अछूतों को उठाना, हिन्दुओं की छुआछूत तथा ऊँच-नीच भावना को दूर करना उनका दैनिक कार्य बन गया था जिस पर वे जीवन भर आरूढ़ रहे थे। उनके कथनों में इस प्रकार के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। राष्ट्रीय योजना के लिये जितना महत्वपूर्ण कार्य भूषण ने किया था उतना उस समय तक किसी के द्वारा नहीं हुआ दिखलाई देता। आलोचना विषयक भाग में इस पर पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा।

भूषण के संबंध में कितनी ही भ्रान्तियों को तत्कालीन शासकों ने तो फैलाया ही था अंग्रेजों के पिट्ठुओं और खुशामदी टट्टुओं ने और भी गहरा रूप दे दिया था। उन्होंने भूषण जैसे राष्ट्रोद्धारक महाकवि को भिखमँगा तथा घोर शृंगारी तक कह डाला था। इसी प्रकार से इस कवि को जाति-विद्वेषी तथा राष्ट्रीयता विरोधी कहने में भी नहीं चूके थे। इसके संबंधित

---

1. सुधा वर्ष ३ खंड १ सं० ५ पृ० ५३० 2. छत्रसाल का जीवन चरित्र, साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग; छत्र प्रकाश

इतिहास को विकृत रूप देने में तो लगभग सभी प्राचीनता पक्षपाती साहित्यकों ने पूरा भाग लिया था जिसकी ऊहापोह में २५ वर्ष का लम्बा समय लग गया था। कुछ साहित्यिक गुप्त रूप से ही उक्त प्रतिक्रियावादियों को बल दे रहे थे। परन्तु अन्त में तिमिराच्छन्न मेघ क्रमशः हटते गये और सत्य का प्रकाश बढ़ता गया। फिर भी भूषण विषयक बहुत बड़ा कार्य शेष है।

२. रचना खण्ड

रचनाओं की विचारधारा

महाकवि भूषण की रचनाएं अपना विशेष महत्व रखती हैं। इनके द्वारा जो राष्ट्र का महान कार्य सम्पन्न हुआ है इसकी तुलना भारत के इतिहास में नहीं मिलती.। फिर भी काल की थपेड़ों ने उनका बहुत बड़ा अंश लोप कर दिया है। यहाँ तक कि 'भूषण हजारा' के सहस्र छन्दों में से केवल सौ के लगभग कवित्त सवैयों का अब तक खोज से पता लग सका है। कालिदास त्रिवेदी ने अपने हजारा में 'भूषण हजारा' के ७५ कवित्त सवैये उद्धृत किए हैं। परन्तु उक्त कालिदस हजारा भी अब तक प्रकाश में नहीं आ पाया है। इस दशा में भूषण हजारा की कथा ही क्या कही जा सकती है।

भूषण के ग्रंथों में से केवल एक ही रचना प्रकाश में आ सकी है वह है 'शिवराज भूषण' जिसे कवि ने साहू के दरबार में रहकर रचा था। इसके अतिरिक्त अन्य कोई ग्रंथ अब तक अन्वेषण द्वारा प्राप्त नहीं हुआ। इसके सिवाय भूषण उल्लास एवं दूषण उल्लास नामक ग्रन्थों की चर्चा शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में की है। परन्तु इन ग्रन्थों का भी कहीं पता नहो चल रहा है शिवा बावनी के ५२ छन्द एक विशेष घटनापूर्ण होने से दक्षिण में ही प्राप्त हुए हैं। उत्तरी भारत में यद्यपि भूषण का कार्य क्षेत्र था जीवन मरण भी यहीं हुआ। फिर भी उनकी रचनाएं इधर नहीं मिल रही हैं इस का एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि अन्य अनेकों कवियों ने भूषण के कवित्तों को अपना कह कर प्रसिद्ध कर दिया है। इनमें से दत्त, इन्दु, भूधर, सारंग, गङ्ग, और नेवाज के नाम पर भूषण के छन्द 'प्रचलित' पाये गए हैं जिन पर पत्र-पत्रिकाओं में भली प्रकार से विचार विनिमय करके निराकरण किया जा चुका है। यहाँ पर उनमें से हम एक

उदाहरण नमूने के रूप में देकर पाठकों को दिखलाना चाहते हैं कि किस प्रकार से इन पिछले खेवे के कवियों ने भूषण के छन्दों को अपना कर अपने नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। भूषण कवि का यह छन्द शिवा बावनी में दिया हुआ है—

केतिक देश दले दल के बल,
दच्छिन चंगुल चापि कैं राख्यौ।
रूप गुमान हर्‌यौ गुजरात कौ,
सूरति कौ रस चूंसि कै नाख्यौ।
पंजन पेलि मलेच्छ मले सब,
सोई बच्यौ जेहि दीन है भाख्यौ।
सो रंग है सिवराज बली जेहि,
नौरङ्ग में रङ्ग एक न राख्यौ।
(शिवा बावनी)

यही छन्द दत्त कवि के नाम पर श्रृंगार संग्रह में इस प्रकार से दिया हुआ है—

केतिक देश जिते छल के बल,
चापि धरा धर चूरि कै नाख्यौ।
रूप गुमान हर्‌यौ गुज रात कौ,
सूरति कौ रस चूसि कै नाख्यौ।
जट्ट की हद्द लिखी कवि दत्त ने,
झूठ नहीं यह सांच कै भाख्यौ।
सो रंग है सिवराज बली जेहि,
नौ रंग में रंग एक न राख्यौ।

उक्त छन्द के इन दोनों रूपों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम छन्द में मौलिकता है और भूषण के पूर्ववर्ती होने के कारण पर वर्ती दत्त ने ही उसे चुराकर अपना लिया है यह स्पष्ट प्रमाणित होता है।

दक्षिण का शिवाजी से विलेष संबंध है। वहाँ पर उन्होंने अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया था। दत्त कवि ने दक्षिण शब्द हटा कर 'धरा' शब्द उसके स्थान पर रख दिया है। इससे इस छन्द की ऐतिहासिकता नष्ट हो गई है तथा शिवाजी का साक्षात् संबंध उससे दूर हो गया है।

दत्त कवि ने इसमें "जट्ट की हद्द" जोड़कर अपने आश्रयदाता भरतपुर नरेश की प्रशंसा करने का प्रयत्न किया है। परन्तु औरंगजेब के छक्के छुड़ाने वाला शिवाजी ही था जाट नहीं। जाट तो औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् क्षेत्र में आये हैं अतः अन्तिम पंक्ति को ज्यों का त्यों शिवाजी के नाम पर ही रहने दिया है यथार्थ में देखा जाय तो यही अंतिम पंक्ति इस सवैया की जान है इसके एक भी शब्द का हटना सारे छन्द को विकृत कर देता है। इसी से वे ऐसा न कर सके। गुजरात और सूरत की विजयों का जाटों से कोई संबंध न था। उनका राज्य विस्तार यू० पी० के पूरे प्रान्त पर ही नहीं हो पाया था फिर दक्षिण विजय की चर्चा तो एक झूठा प्रलाप ही मानना पड़ेगा। इसीलिये कवि ने "झूट नहीं यह साँच कै भाख्यौ।" के वाक्छल द्वारा झूठी सौगंध खाकर अपने कथन की पुष्टि करनी चाही है जिसमें सत्य नाम को भी नहीं है।

उक्त विजयों और लूट का सीधा संबंध शिवाजी तथा मरहठों से है अतः स्पष्ट हो जाता है कि छन्द भूषण का ही रचा है अन्य का नहीं। छन्द के दक्षिण में पाये जाने के कारण इस पर भूषण कृत होने की और भी पुष्टि हो जाती है। शिवसिंह सरोज ने भी इस छन्द को भूषण का ही रचा माना है। इसी प्रकार से अन्य कवियों के बारे में भी यही बात घटित हुई है जिनका स्थान संकोच से विवेचन करना उचित नहीं जान पड़ता। कवि परम्परा में दूसरों का भावापहरण ही एक अपराध माना जाता रहा है। यदि कोई कवि दूसरे कवि के छन्द अथवा पद्यांश को चुराकर अपना कहने लगे तब तो वह उसका अक्षम्य अपराध कहा गया है।

दूसरा कारण भूषण की रचना के लुप्त होने का उसकी राष्ट्रीयता है। इस महाकवि ने अपनी कविता द्वारा राष्ट्र का सगठन करके औरंगजेबी साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया था अतः बाद के मुसलमान शासक तथा अंग्रेज अधिकारी इस राष्ट्रीय भावना को पनपने नहीं देना चाहते थे। यही कारण है कि ग्रियर्सन, ग्रीब्स, की, तथा गार्सां द तासी आदि अंग्रेज तथा फ्रेन्च लेखकों ने भूषण कवि की कहीं चर्चा नहीं की तथा शृंगारी और साम्प्रदायिक कवियों के बारे में खूब विस्तार से प्रचार किया। मुसलमान शासकों ने भी झूठी किंवदन्तियों द्वारा यथार्थता का लोप करने का प्रयत्न किया था। इसी से हम भूषण के विषय में इतिहास को आज भी अधिक अंधकार में फँसा पाते हैं। अब भी यही प्रयत्न किया जा रहा है। कवि की मर्मज्ञता और जीवनदायिनी शक्ति समझने का प्रयत्न बहुत कम देखने को मिलता है।

भूषण के पश्चात् उत्तरी भारत और दक्षिण मे सर्वत्र उथल-पुथल मची हुई थी। जीवन सघर्ष और साम्प्रदायिक स्पर्द्धा भी खूब बढ़ी-चढ़ी थी। मराठों के प्राबल्य से दोनों सम्प्रदायो मे तुलनात्मक रूप समकक्षता को पहुँच गया था। भूषण के प्रयत्न से इस रूप के आने मे अधिक सहायता मिली थी। इसीलिये देश मे आपाधापी तीव्र गति से बढ़ रही थी। इस स्थिति मे काव्याराधना के लिये स्थान रह ही कहाँ जाता है! अतः कविता का मानदंड बहुत गिर चुका था। इसी से अठारहवीं शताब्दी के बाद हमे उच्च कोटि के कवियो का नितान्त अभाव दिखलाई देता है। इस काल मे अज्ञानता का प्रसार भी अधिक जान पड़ता है यह भी एक प्रमुख कारण था जिससे भूषण की कविताओं का लोप होता गया था। भूषण कवि जो राष्ट्रीय भावना देश मे लाना चाहते थे उसके न तो समर्थक ही देश मे रह गये थे और न ऐसे आश्रयदाता ही दिखलाई देते थे जिनके द्वारा इस कार्य को बढाया जा सके।

डा० पीताम्बर दत्त जी बड़थ्वाल ने भूषण के नायिकाभेद संबधी २५ कवित्त सवैये नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित किये थे। इन

छन्दों से विदित होता है कि महाकवि भूषण ने नायिकाभेद पर भी कोई ग्रंथ रचा था। संभव है ये छन्द भूषण उल्लास अथवा दूषण उल्लास में से किसी के भाग हों अथवा किसी अन्य ग्रंथ का ही यह एक अंश हो। अतः इनके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

शिवा बावनी

जब भूषण कवि दक्षिण की यात्रा में बीजापुर तथा गोलकुंडा होते हुए सितारा पहुँचे तो जिस प्रकार से छत्रपति साहू और बाजीराव से भूषण ने भेंट की और वहाँ पर सम्मानित हुए थे उसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। भूषण-साहू की यह भेंट अनजान में हुई थी अतः भूषण ने अपनी रुचि के ही छन्द उन्हें सुनाये थे। इनमें से अधिकांश छन्द शिवाजी की प्रशंसा में ही कहे गये हैं। अनेक छन्द ऐसे हैं जो शिवाजी की प्रशंसा में कहे गये हैं परन्तु उनकी ऐतिहासिकता साहू और बाजीराव पेशवा से संबंधित है! शिकार से ये लोग लौटे थे अतः भूषण ने तत्संबंधी भी एक कवित्त उन्हें सुनाया था। साथ ही सुरकी नरेश तथा अवधूतसिंह की प्रशंसा में भी एक-एक कविता कही थी। उस समय औरङ्गजेब राष्ट्रीय शत्रु के रूप में प्रतिपादित हो रहा था अतः उसके संबंध में कवित्व का रूप वही हो सकता था जैसा कि भूषण ने दिया था। राष्ट्र-निर्माण के लिये इसी एक मात्र भावना से काम लेने की आवश्यकता थी। इसके बिना न तो उत्साह का सम्पादन हो सकता था और न शीघ्र सफलता पाने के लिये उत्तेजना की देन ही समाज को दी जा सकती थी।

उक्त सजीवता को स्थायी रुप देने के लिये औरंगजेब के बाद भी भूषण ने उस शासन को उसी रूप में प्रतिपादित किया था जैसा कि शिवाजी के पश्चात् साहू और बाजीराव पेशवा के शासन और महत्ता को उन्होंने शिवाजी की देन समझ कर उन्हीं के नाम से अभिहित किया है। शिवा बावनी की रचना से भूषण की इस भावना का स्पष्ट पता चल जाता है। भूषण की इस प्रणाली का जो अध्ययन नहीं कर पाता वह इस कवि

की महत्ता और प्रभाव को समझने में भी असमर्थ रहेगा। राष्ट्र-निर्माण के लिये उत्तेजना और उत्साह दोनों की ही आवश्यकता होती है। कब किससे किस प्रकार का काम लेना चाहिए यह रचयिता के निर्णय पर निर्भर रहता है। भूषण इस विषय का सबसे अच्छा ज्ञाता था, इसमें सन्देह नहीं। उसकी सफलता ही इस बात की द्योतक है। उत्तेजना उत्साह का ही एक रूपान्तर है जो परिस्थिति के अनुसार काम में लाया जाता है प्रयोग कर्त्ता की समन्वयात्मक बुद्धि ही इसकी निर्णायिका है।

शिवा बावनी का पहला छन्द ही इस भावना को व्यक्त करता है कि शिवाजी का आतंक औरंगजेब पर कितना छाया था भूषण ने इसे ११ उपमाओं द्वारा पुष्ट करके पाठकों के सम्मुख रखा है जिनमें इन्द्र का प्रभाव जंभासुर पर, बड़वानल का पानी पर, राम का रावण पर, पवन का बादल पर, शिव का कामदेव पर, परशुराम का सहस्रबाहु पर, वन की आग का लकड़ियों पर, चीता का हिरणों पर, सिंह का हाथियों पर, प्रकाश का अंधकार पर, और श्रीकृष्ण का कंस पर है, वैसा ही प्रभाव शिवाजी का औरंगजेब पर है। इस प्रकार शिवाजी का आदर्श उपस्थित कर जनता में नवजीवन देना कवि का लक्ष्य था।

भूषण एक छन्द द्वारा प्रश्न करता है कि कौन बड़ा है कौन साहसी है? वीरत्व और लज्जा किसमें है? चकवा और सुमनों (सुन्दर मनों) को सुख देने वाला कौन है? उदार कौन है? इसका उत्तर कवि देता है कि दक्षिण नरेश शाहजी का पुत्र शिवाजी है।

भूषण ने शिवाजी की सेना का बड़ा ही विशद् वर्णन किया है। उसकी चतुरङ्गिनी सेना का संचालन युद्ध के लिये बड़े ही मार्के का होता था उसके धौंसा की धुकार बेहद थी। मस्त हाथियों के मद से नदी-नदों में बाढ़ आ जाती थी। ऐसे हाथियों की रेल-पेल से पहाड़ उखड़ जाते थे। सेना संचालन के कारण धूल इतनी अधिक उठती थी कि सूर्य तारे जैसा लगता था और पृथ्वी पर समुद्र ऐसे हिलते थे जैसे थाल में रखा

हुआ मारा फिर रहा हो। वीर रस की भावना लाने में ऐसा ही साहित्य उत्कर्ष दे सकता था।

इसी प्रकार कविभूषण ने सवारों की झंडियों और हाथियों के घंटों का बड़ा ही वीरता से परिपूर्ण चित्रण किया है। उनके आतंक से पहाड़वासी घबड़ा गये थे, ग्राम और नगर वाले भाग गये थे। घर को भागते हुए हाथियों के हौदे उकस गये थे तथा भौंरे जो मस्तक पर घूमते थे वे मार्ग में ही रह गये थे। शिवाजी की सेना के दबाव से कच्छप भगवान की पीठ टूट गई और शेषनाग के फन केरा के पत्ते से फट गये थे।

औरंगजेब और उसके सरदारों के परिवार पर शिवाजी का कितना आतंक था कि बादलों की घटाओं को हाथियों की सेना मान कर त्रस्त हो जाते थे। बिजली को खुली तलवार, तीज के चन्द्रमा को सवारों के सिर को छाप बतलाते थे। इस प्रकार से हरम में बेगमें हवा से ही सेना का आगमन मान कर त्रस्त हो जाती थीं। भूषण की इन रचनाओं से औरंगजेब की प्रतिस्पर्द्धी भावनाओं को अच्छा बल मिला था। किसी-किसी छन्द में त्रस्त बेगमों के भागने का भी चित्रण किया गया है जिस में अपडर की ही प्रधानता थी। शिवाजी की सेना ने कभी उन पर अत्याचार नहीं किया था। शिवाजी की सेना के लिये इस संबंध में कड़ी आज्ञा थी कि मसजिद, क़ुरान और मुसलिम स्त्री किसी को हानि न पहुँ-चाई जाय और न अपमान किया जाय।

भूषण ने औरंगजेब का सब राजाओं पर दबाव पड़ने का फूलों तथा भौंरे के रूपक से अच्छा चित्रण किया है उसमें शिवाजी को चम्पा का रूपक देकर भौंरे के आघात से उसे बचाया है। इसमें साहित्यकता का गहरा पुट होते हुए भी राजनीति का भी अच्छा विश्लेषण कर दिखाया है।

शिवाजी के दक्षिण विजयों का वर्णन करते हुए भूषण ने औरंग-को (नौरंग) नाम देकर उसकी आभा को कैसे मलीन कर दिया था

इसे सूरत की लूट तथा गुजरात की विजय के सहारे से बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण किया है। हिन्दी साहित्य में इस कोटि की रचना अन्यत्र शायद ही देखने को मिल सके।

भूषण ने पक्षियों के शिकार के आधार पर साहू की शिकार खेलने की प्रवृत्ति का तो चित्रण किया ही है इसके साथ ही बाजीराव पेशवा को बाज के रूप में चित्रित कर मुगलिया सरदारों को पक्षी रूप में अंकित किया गया है इससे कवि की भावना को हम सरलतया समझ सकते हैं। बाजीराव ने दिल्ली राजधानी तक अपना अधिकार करके मुगलसत्ता को समाप्त ही कर दिया था।

साहू की विजयों तथा आतंक को कवि ने बलखबुखारा, मुल्तान, रूस खुरासान, सक्खर, भक्खर तथा मकराना तक विस्तृत करने का वर्णन किया है जो कि यथार्थता का ही द्योतक है। शिवा बावनी में भूषण ने साहू को अनजान में हृदयराम सुरकी एवं अवधूतसिंह सोलंकी की भी प्रशंसा सुनाई थी जो भूषण की दक्षिण यात्रा से पूर्व ही रीवां पर अधिकृत हुए थे। इस छन्द में कवि ने बड़ा ही प्रभावशाली चित्रण किया है। साथ ही हाथियों को तेग से काटने का उल्लेख कर बड़ा ही गंभीर वीरत्व प्रदर्शन किया है। इस छन्द में ओज कूट-कूट कर भर दिया गया है।

कुछ छन्दों में कवि ने औरंगजेब की निन्दा भी की है तथा अपने बाप शाहजहाँ को कैद करने एवं परिवार को नष्ट कर डालने का बड़ा ही गंभीर विवेचन किया है। इस अन्याय पूर्ण ढँग से बादशाही पाने के लिये उसे तिरस्कृत भी किया है फिर उसके छल छंदों की चर्चा करते हुए बगुला भगत बन कर माला जपने के ढोंग का पर्दाफाश कर "सौ-सौ चूहे खाय कैं बिलाई बैठी तप के।" का कैसा सटीक विश्लेषण किया है। एक दूसरे छन्द में भूषण ने औरंगजेब द्वारा मंदिर गिराने तथा हिन्दुओं पर अत्याचार करने का बहुत ही विस्तार पूर्वक कथन किया है और बतलाया है कि पीर-पैगंबरों का इसने कैसा विस्तार कर डाला था। कहीं पर भूषण औरंगजेब को कुंभकर्ण के रूप में चित्रित करते हैं तथा काशी में विश्वनाथ

का मंदिर और मथुरा में केशवराय का देहरा गिरा कर मसजिद के रूप में परिणत कर डालने की चर्चा करते हैं।

कुछ छंदों में शिवाजी की विजयों का बड़ा ही विशद् वर्णन किया गया है सल्हेर के युद्ध में जो महान विजय औरंगजेबी सेना पर शिवाजी को मिली थी उससे शत्रुओं पर कैसा आतंक भर गया था तथा युद्ध में कैसी उनकी दुर्दशा हुई थी इसका वर्णन बहुत ही सुन्दर हुआ है। इसमें २२ बड़े सरदार मारे गये थे। इससे विदित होता है कि युद्ध का चित्रण करने में भूषण बड़े ही दक्ष थे। इस भावना में उनकी सजीवता दर्शनीय है। भूषण ने साहू और बाजीराव पेशवा की विजयों का उल्लेख भी शिवाजी के नाम पर ही कर दिया है। भेलसा और सिरोंज में छावनी डालना तथा गुजरात की विजय और दिल्ली तक अधिकार कर लेना शिवाजी के संबंध की घटना नहीं है फिर भी कवि ने इन्हें शिवाजी के नाम, पर ही कथन किया है। उक्त विजय बाजीराव पेशवा ने की थीं। इसका मुख्य कारण यही था कि इन विजयों को भी भूषण शिवाजी के आदर्श की विजय समझते थे।

शिवा बावनी में कर्नाटक, मलाबार, जिंजी, तंजौर, गोलकुंडा और मदुरा नरेशों के शिवाजी के आतंक से 'दब कर' त्रस्त होने का चित्रण किया गया है। साथ ही यूरोपियनों की सूरत में बस्ती लूटने, हबशियों को हराने एवं बीजापुर के इलाके लेने का उसमें आकर्षक वर्णन मिलता है। इस विषय में अफजल खाँ के बध की चर्चा जितने महत्वपूर्ण ढङ्ग से की गई है वह अन्यत्र कठिनता से ही मिल सकेगी।

भूषण ने अपने चित्रण में पौराणिक भावों का भी पर्याप्त सहारा लिया है। इसी से शिवाजी को अवतार रूप में अंकित किया है तथा इन्द्र जैसे वैदिक देवता को तुलसी की तरह गिराने का प्रयत्न न कर उसके आदर्श की पूर्ण रक्षा की है। कंस-कृष्ण, कैटभ-कालिका, अत्याचारी—इन्द्र, रावण-राम जैसे रूपक भूषण ने खूब लिखे हैं। इसी आधार पर उन्होंने शिवाजी को हिन्दुत्व का रक्षक ठहराया है और मन्दिरों में

देवताओं की और समाज में धर्म की रक्षा करने वाला ठहराया है। साथ ही पापियों को दण्ड देने वाला कह कर देश में सभी काम काज वालों को निश्चिन्त कर दिया गया बतलाया है। इस प्रकार से शिवा बावनी की रचना अपना एक विशेष महत्व रखती है।

भूषण विषयक जितनी सामग्री उपलब्ध है उसमें सबसे महत्व-पूर्ण स्थान शिवराज भूषण का है। यह एक अलंकार ग्रन्थ है। जिसके लक्षण दोहों में कहे गये हैं और उदाहरण कवित्त सवैयों में दिये गये हैं। ये सब उदाहरण शिवाजी की प्रशंसा में ही रचित हैं जिनमें साहित्यिक गरिमा के साथ ऐतिहासिक वर्णन यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है।

इस ग्रंथ में जो मङ्गलाचरण दिया गया है वह एक गंभीर वीर रस की भावना के अनुरूप चित्रित किया गया है। कवि ने गणेश का ब्रह्म के रूप में वर्णन किया है जिनके गंडस्थल अलिकुल से मंडित हैं और आनन्द रूपी नदी में स्नान करना जिसे प्रिय है। वे गणेश पाप वृक्ष के नाश करने वाले विघ्न रूपी किलों को तोड़ने वाले तथा संसार का मनोरंजन करने वाले हैं ऐसे दो दन्त वाले गणेश का गान कीजिए। मध्यकालीन युद्धों में हाथियों से किलों के तोड़ने का काम लिया जाता था। वृक्षों के तोड़ने में इन्हें रुचि है। गाँव वालों का हाथी से मनोरंजन होता ही है अतः यह कथन वीर रस के नितान्त अनुकूल है इस पर भूषण ने एक दन्त वाले गणेश की प्रार्थना नहीं कराई जो कि हार की निशानी है। परशुराम ने गणेश का एक दाँत तोड़ दिया था। अतः विश्व विजयी दो दन्त वाले गणेश को वन्दनीय माना है इससे हम सरलतया भूषण की महत्वपूर्ण भावना का अनुमान कर सकते हैं।

दुर्गा की प्रार्थना भी उसी विजयिनी विचारधारा को लेकर व्यक्त की गई है जिसने शक्ति के रूप में मधु कैटभ, महिषासुर, चंड-मुंड, भंडासुर, रक्त बीज तथा विडालाक्ष को बध किया था। यही भावना वीरत्व को उत्कर्ष दे सकती है शिवाजी का आदर्श विस्तार के लिये इसी साधना से काम लिया गया है।

तीसरी प्रार्थना सूर्य की की गई है जो कि ज्ञान और प्रकाश का दाता है।संसार रूपी समुद्र के पार करने के लिये इसे ही नौका रूप माना गया है। वैदिक मुख्य प्रार्थना भी गायत्री रूप में इसी भावना को लेकर चली है। इसी से सूर्य को आनन्द का घर कहा गया है तथा सविता रूप में यही प्रतिपाद्य विषय था।

राजवंश वर्णन में सीसोदिया, सरजा, भौंसला और खुमान की जो व्युत्पत्ति की गई है वह वैदिक प्रणाली पर ही व्यक्त हुई है।

भूषण ने शिवाजी को ईश्वरावतार रूप में राम-कृष्ण के समकक्ष मानकर ही चित्रित किया है। इसी लिए प्रारंभ में ही वे स्पष्ट कर देते हैं —

दशरथ जू के रामभे, बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के श्री सिवराज भुआल॥
(शिवराज भूषण, छं० ११)

भूषण ने शिवराज भूषण में रायगढ़ का बड़ा ही विशद् वर्णन किया है। यह किला बीच की तीन गढ़ियों से युक्त होने के कारण 'माची' कहा गया है। महाराष्ट्र में यह 'माची' शब्द गढ़ी के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। उसकी सजावट से इन्द्रपुरी की तुलना की गई है। दस छन्दों में उसके वृक्षों, महलों, बगीचों तथा दरबारों का अत्यन्त ही आकर्षक चित्रण किया गया है।

कवि वंश वर्णन में भूषण ने अत्यल्प बातें कहीं हैं। केवल पिता का नाम वंश, गोत्र और निवास स्थान का उल्लेख भर कर दिया है। राजा बीरबल ने उसी तिकमापुर के पास कानपुर हमीरपुर रोड पर एक बिहारीश्वर का मन्दिर बनवाया था जिसकी चर्चा भी भूषण ने की है।

अलङ्कारों का प्रारम्भ करते हुए इस महाकवि ने 'उपमा' को सर्वोत्कृष्ट माना है अतः उसी से अलङ्कारों का प्रारंभ कर क्रमशः अलङ्कारों का विस्तार किया है। इसमें १०५ अलङ्कारों के उदाहरण और परिभाषा देकर अन्त में आशीर्वाद के साथ इस ग्रंथ की समाप्ति की गई है।

प्रथम उदाहरण में ही कवि की विशेषता का परिचय मिल जाता है इसमें कवि दिखलाता है कि जैसे इन्द्र ने श्रीकृष्ण को द्विविधा में डाल दिया था वैसे ही शिवाजी ने औरंगजेब को चकित कर दिया था। यह उपमा साधारण रूप से कुछ विकृत सी मालूम होती है तथा लोकाचार के अनुकूल नहीं जान पड़ती! परन्तु जब हम भूषण की वैदिक भावना पर दृष्टि डालते हैं जिसमें इन्द्र सबसे प्रमुख देवता गिना गया है तब इसका ठीक-ठीक समन्वय होने में देर नहीं लगती और कवि की महत्ता का रूप स्पष्ट हो जाता है। हमें इसी शैली पर भूषण की रचना का निर्णय करना चाहिए।

रूपक के चित्रण में भूषण ने औरङ्गजेबी अत्याचारों को कलियुग के अधर्म मय काल से तुलना करते हुए बड़ा ही विशद् वर्णन किया है तथा इन अत्याचारों को समुद्र के रूप में घटित कर तरंगों को अधर्म, लाखों म्लेच्छों व अत्याचारियों को मगर-मच्छ का समूह, राजाओं का आश्रित होना नदी-नद के तुल्य मान करके कलियुग रूपी समुद्र में जामिलने से नीरस बनजाना बड़ी ही सटीक भावना है। इस प्रकार से औरङ्गजेब रूपी कलियुग ने सारी भूमि को अपने आधीन कर रखा था इस समुद्र से पार हो जानेवाले शिवाजी ने बादवान रूपी तलवार से यश रूपी जहाज को आगे बढ़ाया था। कैसा प्रभावशाली कथन है। इसी रूपक के दूसरे उदाहरण में कलियुग का शारीरिक चित्रण कर औरङ्गजेब को सिर के रूप में, अब्बास खाँ उसका हृदय, आदिलशाह एवं कुतुब शाह उसकी दो भुजायें, म्लेच्छ उमराव इसके पैर तथा अन्य म्लेच्छतुर्क उस कलियुग के शरीर के अन्य अङ्ग है। इस कलियुग ने संसार में अत्याचार तथा अनाचार भर दिया जिसका खण्डन शिवाजी ने साहस के साथ तेग लेकर कर दिया था। कैसा प्रभावशाली विश्लेषण है!

भूषण ने ऐतिहासिक विवरणों को अलङ्कार के रूप देकर जैसी हृदय ग्राही एवं आकर्षित सामिग्री प्रस्तुत की है उसका भी अवलोकन कीजिए।

अफ़जल ख़ाँ याकूत ख़ाँ और अंकुश ख़ां को साथ लेकर १२००० सेना के सहित शिवाजी को पकड़ने आया था जिसे देखकर महाराष्ट्र

प्रान्त में खलबली मच गई थी और लोग घबड़ा कर भागने लगे थे, तब शिवाजी ने बघनखाँ के सहारे उसे पटक कर समाप्त कर दिया इस पर आकुतरूपी महावत अफ़जल रूपी गज के बिना होकर अंकुश (ख़ाँ) के साथ भाग गया । कैसी उच्चकोटि की हृदयग्राही व्यंजना है !

भूषण ने पौराणिक भावनाओं का सहारा लेकर भी अनेकों आकर्षक चित्रण किये हैं । इन्द्र ने पहाड़ों के पंख काट दिये थे अतः सभी पहाड़ अपनी रक्षा शिवाजी की शरण में देखकर उनके पास चले आते हैं अर्थात् शिवाजी उन्हें विजय कर लेता है । जो कि पृथ्वी का इन्द्र है । तब यह इन्द्र पहाड़ों पर किले बनवाकर उन्हें फिर सपक्ष शक्तिवान तथा पंखयुक्त बना देता है । भूषण की रचना में ऐसी उद्भावनाएँ और उक्तियों की भरमार है जिनमें मौलिकता तो है ही उत्साह के नवीन श्रोतों का आकर भी है । ऐसी ही रचनाएं समाज में नवजीवन और उत्साह भरने में समर्थ हो सकती हैं । कवि ने अनेकों छन्दों में बीजापुर, गोलकुंडा औरंगजेब 'दिल्लीनरेश' आदि को हराने, उनपर विजय पाने तथा ब्राह्मण रक्षा की चर्चा की है । इसके साथ ही शिवाजी की तलवार रूपी सूर्य से सारी भूमि को तपित करने की चर्चा करके कुमुदिनी रूपी तुर्किनियां (अत्याचारिनी) को मलिन एवं हिन्दू स्त्रियों रूपी कमलिनियों के खिलाने का उल्लेख कर राष्ट्रीय भावना का चित्रण किया है । कहीं पर भूषण कवि बादलों की वर्षा रूपी उदारता से दरिद्रता रूपी दावानल के नष्ट कर देने का उल्लेख करते हैं । इस रचना में ऐसी ही भावनाएं सर्वत्र ओत प्रोत हैं ।

कहीं पर उल्लेख अलंकार के उदाहरणों में शिवाजी को भिन्न-भिन्न रूपों में अङ्कित किया है । कहीं वह कल्पद्रुम बनाया जाता है । कहीं मनोज का अवतार कह कर सौन्दर्यशाली कहा जाता है कहीं पृथ्वी का चन्द्रमा और कहीं नृसिंह रूप में दिखलाया जाता है ।

इन कथनों से ऐतिहासिक तथ्य भी बड़ी ही सुन्दरता से आलंकारिक रूप में वर्णन किया गया है । इसीलिये आदिलशाही उसे गजब ढाने-वाला, कुतुबशाही उसे मौजलहरी तथा बहरीनिजाम उसे जीतनेवाला

देव (भयकर) कहकर पुकारते हैं। बीजापुर पर अधिक आक्रमण होने से कहरी कहा है। मधुना पन्त की मित्रता से गोलकुंडा वाले मौजलहरी (मित्र) रूप में तथा समुद्री सेना वाले निजाम उसे भयंकर मानते हैं। इन पदों में ऐतिहासिकतथ्यों का जैसा सुन्दर विश्लेषण मिलेगा वैसा विश्व के किसी कवि में शायद ही मिल सके।

कहीं भूषण कवि बहादुर खाँ को बेगमों से शिक्षा दिलवाते हैं। इसमें शिवाजी को सिंह के रूप में तथा दिल्ली के अमीरों को गाय के रूप में अङ्कित कर भारतीय संकुचित विचार धारा को तिरस्कृत करने की भी ओर पद बढ़ाया गया है।

शिवाजी के औरंगजेब की जेल से भागकर दक्षिण में पहुँचने का भी कवि ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उसे गधर्व तथा देवता के रूप में वर्णन किया है। कहीं शिवाजी शिव (महादेव) को प्रसन्न करने के लिये म्लेच्छों का शिरच्छेद करते दिखलाये गये हैं।

शिवाजी की उपाधि सरजा (सिंह) थी इस पर भी कवि ने बड़ी ही आकर्षक व्यंजनाएँ की हैं। औरङ्गजेब जगल में शिकार खेलने जाता है सिंह के आजाने पर शिकारी लोग 'सरजा' (शिवाजी) के आने का उल्लेख कर बादशाह को भयभीत कर देते हैं। इससे वह बेहोश हो जाता है। तब साथी सिंह बतलाकर उसे चेतना देते हैं भूषण कवि ने शिवाजी की धाक का सबसे अधिक वर्णन किया है। मुख्यतया अफजल खाँ की दुर्दशा, शायस्ता खाँ की आपत्ति, और बहलोल खाँ की विपत्ति का महत्वपूर्ण वर्णन करके सारी म्लेच्छ सेना पर ही शिवाजी का आतंक जमाकर उसके सहारे से पूरे राष्ट्र में जागरण, उत्तेजना और उत्साह की एक प्रबल धारा बहा दी थी। कहीं इन घटनाओं को मृगेन्द्र व हाथी के रूपक में तथा कहीं बाघ और मृग के सहारे से अङ्कित किया है इसी कारण भूषण का चित्रण बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है और सर्वत्र उसमें मौलिकता तथा नवीनता का आभास मिलता है।

पहाड़ शिवाजी के पास क्यों आते हैं ? इस संबंध में कवि की एक अनोखी उक्ति का दिग्दर्शन कीजिए—

चूँकि अन्य कोई इन पहाड़ों की रक्षा नहीं कर सकता इसीलिये ये पहाड़ शिवाजी से प्रीति करते हैं और उनके पास चले आते हैं। हे शिवा जी ! तू इन्द्र के छोटे भाई विष्णु के अवतार है इसी से तेरी भुजाओं का सहारा पाने के लिये वे तुझसे सलाह करते हैं तब तू उन्हें अपनी शरण में लेकर संरक्षण रूप में निडर बसने के लिये उन पहाड़ों पर किले बनवा देता है। अर्थात् उनके सिर पर पाग बाँध देता है। इस प्रकार से शिवाजी द्वारा पहाड़ी किले बनवाने का बड़ा ही भव्य चित्रण किया गया है जैसा अन्यत्र कहीं नहीं दिखलाई देता।

शिवाजी के सरदार ताना जी मौलसरे को सिंहगढ़ विजय के लिये भेजा था जहाँ पर उदयभान राठौर औरङ्गजेब की ओर से गढ़पति था। ताना जी ने रात्रि में आक्रमण करके किले पर कब्जा कर लिया। परन्तु इसी आक्रमण में तानाजी मारा गया था। अन्त में शिवाजी को सूचित करने के लिये घास के ढेर में आग लगा दी गई थी। भूषण ने इसका बड़ी ही आलंकारिक भाषा में चित्रण किया है। उसे प्रभात की प्रभा के रूप में अंकित किया है परन्तु भूषण ने तानाजी के मारे जाने का उल्लेख नहीं किया क्योंकि इससे उत्साह उत्पादन में बाधा पड़ने की संभावना थी।

भूषण ने औरङ्गजेबी बहुत से सरदारों का विस्तार से वर्णन किया है। इसी से खानदौरा, जोरावर, सफदरज़ंग, कार तलब खाँ, आदि को लूटने का विस्तार से उल्लेख किया है तथा सल्हेर की विजय का तो अनेक छन्दों में चित्रण किया है। वह विजय थी भी बहुत महत्व पूर्ण, जिसमें औरङ्ग-जेब के २२ बड़े सरदार मारे गये थे। उन्हीं में अमरसिंह चन्दावत भी था। इस युद्ध में लूट भी बहुत मिली थी जिसे औरङ्गजेब द्वारा शिवाजी को खिराज भेजने के रूप में कवि ने कथन किया है।

इसी प्रकार से कवि ने मावली सेना का बड़ा ही वीरत्वपूर्ण वर्णन

किया है। वे किस प्रकार से शत्रुओं के किलों पर रात में अँधेरे में ही चढ़ जाते हैं और उन्हें विजय करलेते हैं। इसी प्रकार से परनाले के किले तथा अन्य विजयों का भी विशद् वर्णन मिलता है जिससे जनता में उत्साह की अच्छी वृद्धि हो सकती है तथा किलों का भी गंभीर विश्लेषण करने से हम कवि की प्रतिभा का अनुमान कर सकते हैं जिनमें राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी गई है तथा नवजीवन का अच्छा उद्रेक होता है।

कवि ने रूपकातिशयोक्ति का आधार लेकर शिवाजी के चित्रण में इन्द्र, विक्रम आदि की महत्ता को तुच्छ ठहराया है। और शत्रु नारियों के रुदन को स्वर्णलता के चन्द्र रूपी मुख के कमल नेत्र से मकरंद की बूंदे टपकती हैं कहकर बड़े ही मनोहर रूप में भाव प्रदर्शन किया गया है।

कवि ने औरङ्गजेब के शासन का चित्रण कर श्रीनगर, नैपाल, आदि राज्यों के कर देने तथा मेवाड़, जयपुर, उदयपुर, बुन्देलखंड, उड़ीसा, रीवाँ आदि के नौकरी करने से देश की गिरावट का दिग्दर्शन कराते हुए शिवाजी को स्वतन्त्र वृत्ति का अच्छा चित्रण किया है और बतलाया है कि शिवाजी की प्रणाली अन्यों को अपेक्षा बिल्कुल भिन्न है अर्थात् वे औरङ्गजेब से कुछ भी भयभीत नहीं हैं।

शिवाजी को ईश्वरावतार रूप में चित्रित करते हुए बतलाया गया है कि मत्स्य, कूर्म, राम, कृष्ण आदि के रूप में ब्रह्म ही शिवाजी के रूप में है। इसी भाँति इन्द्र से उत्कृष्ट शिवाजी को ठहराते हुए व्यतिरेक अलङ्कार के सहारे बहुत ही आकर्षक चित्रण किया है।

शिवाजी के व्यवहार, राजनीति आदि के वर्णन भी कवि ने सांगोपांग किये हैं। विवेक में नाम को भी लालच नहीं है, प्रेम में कपट नहीं है व्यवहार में अनीति नहीं है, तथा कार्य करने में अपयश नहीं हैं। इस प्रकार से भूषण ने शिवाजी को विशेषताओं एवं सद्गुणों का अच्छा विश्लेषण किया है। साथ ही बीजापुर, गोलकुँडा और दिल्ली के बादशाह शिवाजी से कितने सशंकित रहते थे और त्रस्त थे कि अनेक सरदारों के मारे जाने पर भी बदले का साहस नहीं कर पाते थे। जिस शिवाजी

रूपी सिंह का यश कुमाऊँ, मोरङ्ग तथा श्रीनगर तक पहाड़ों में फैला हुआ है बिदनूर एवं उड़ीसा तक विस्तृत हो रहा है तथा बंगाल एवं गुजरात तक पूर्व-पश्चिम में सर्वत्र जिसने शत्रुओं के स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। यही नहीं जो सदैव खूब प्रभावशाली था तथा जोश-खरोश दिखलाता रहता था वह मस्त हाथी रूपी औरङ्गजेब भी जिस सिंह (शिवाजी) के डर से अपनी उच्च पदस्थता को भूल कर मद से रहित हो गया। इस प्रकार से सिंह के रूप में शिवाजी का ही मार्के का चित्रण किया गया है।

भूषण ने जहाँ उत्तेजनात्मक तथा उत्साहवर्द्धक बहुत-सा चित्रण किया है वहाँ शत्रु पर आतंक भरने वाले कथन भी पर्याप्त मात्रा में किये हैं। इसीलिये वे बहलोल को संबोधन कर कहते हैं कि तू शिवाजी से मत झगड़ नहीं तो अब्दुल कादिर बहलोल सी ही तेरी दुर्दशा होगी। इस प्रकार के वाक्यों से अन्य औरङ्गजेबी सरदारों पर आतंक भरने का प्रयत्न किया था। एक छन्द में दिल्ली की सूबेदारी को वेश्या रूप में चित्रित किया है।

इस महाकवि ने शिवाजी के दान और कृपाण दोनों का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया है। शिवाजी के विषय में आगरे से औरङ्गजेबी कैद से भागने का भूषण ने बहुत ही प्रभावशाली चित्रण किया है तथा औरङ्गजेब को सलाम न करके उसके अपमान का उत्तर दिया था। इस प्रकार से बिना सेना के ही सफलता प्राप्त की थी।

शिवाजी ने २०० सिपाहियों से शायस्ता खाँ को पूना में हराया था। उसके घर पर आक्रमण कर उसके लड़के को मार डाला था तब शायस्ता खिड़की से कूदकर भागा था परन्तु कूदने में ही उसकी अँगुलियाँ काट दी गईं थीं। उस समय इसकी वहाँ १ लाख सेना पड़ी थी।

शिवाजी ने औरंगजेबी परिवार और सेना की कैसी दुर्दशा कर डाली थी। इसे भूषण ने बहुत ही सुन्दरता से वर्णन किया है। उसने शत्रु सेना की अहम्मन्यता लोप कर दी। भयत्रस्त शत्रु घरों से भाग गये तब उनमें जंगली जानवर वास करने लगे।

कवि ने शिवाजी की अनेक विजयों का विस्तार से वर्णन किया है। जावली, सिंगारपुरी, जवारि, रामनेर आदि विजयों को ओजस्वनी शब्दों में कथन किया है। बीजापुर के मंत्री खवास खाँ ने जब बैर किया तो शिवाजी की सेना के नगाड़े बीजापुर के द्वार पर धमकने लगे। जब शिवाज़ी आलमगीर को कुचल देता है तब आदिलशाह का क्या महत्व है। अंतिम दिनों में शिवाजी ने परनाले का किला लेकर कर्नाटक तक सब देशो को रौंद डाला था। इससे शत्रु परिवार त्रस्त हो गये थे।

शिवाजी ने वीदर, कल्याण, परेन्झा आदि किले बीजापुर से छीने थे तथा कुतुबशाह से रामगिर पर्वत को ले लिया था। इस प्रकार से ३५ किले जीते थे परन्तु वे सब जयसिंह मिर्जा को भेंट कर दिये थे इस प्रकार से पारस्परिक सलाह रखने का प्रयत्न किया गया था। इसी प्रकार से शिवाजी के दान की भी भूषण ने खूब प्रशंसा की है। बड़े-बड़े हाथी, सोने का ढेर और घोड़े, भूमि आदि दान में देते थे।

भूषण ने अनेकों छन्दों में शिवाजी को ईश्वर अवतार हरि के रूप में वर्णन किया है तथा दान एवं कृपाण दोनों का ही उनकी रचना में विशद कथन मिलता है।

कवि ने परिसंख्या के आधार पर वर्णन करके बतलाया है कि शिवाजी के राज में मदवाले केवल हस्ती ही होते हैं चंचलता केवल घोड़ों में ही मिलती है। (पर) पंख केवल बाणों में लगते हैं शत्रु कोई नहीं। गुणी केवल चित्त को चुरा लेते हैं वहाँ चोर नहीं थे। किसी को बंधन नहीं था प्रेम बंधन मात्र था। कंपन केला में था जलविन्दु बादल में ही थे, अन्यत्र नहीं।

एक छन्द में भूषण ने अपने आश्रयदाताओं का उल्लेख कर शिवाजी को सर्वोपरि माना है वे मोरंग, कुमाऊँ, श्रीनगर (गढ़वाल) रीवाँ, जयपुर, जोधपुर, चित्तौड़, कुतुबशाह, आदिलशाह, तथा दिल्लीश्वर के दरबारों में गये थे। अतः उनका उल्लेख किया है। लोहगढ़ एवं सिहगढ़

में औरंगजेबी सरदार गोर तथा राठौर थे उन्हें मार कर शिवाजी ने उन पर अधिकार कर लिया था वे रात के समय आक्रमण करके लिये गये थे।

शिवाजी के दरबार में अंग्रेज, पुर्तगाली, फ्रांसीसी नजराना भेजते थे। कर्नाटक भूमि उसके भय से त्रस्त थी। एक अन्य छन्द में राम ने रावण को तथा अर्जुन ने विराट में कौरव सेना को हराया था वैसे ही गुसलखाने में उसने औरगजेब का घमंड हर लिया था। इसी प्रकार से भूषण ने बाबर और अकबर की मेल भावना का आदर्श बतलाते हुए औरंगजेब को अच्छी फटकार बतलाई है।

भूषण ने रायगढ़ के किले की प्रशंसा विस्तार से की है। तथा उसमें तालाबों के समूह पंपासर एवं मानसरोवर के रूप में थे जिसकी पेड़ियों में पच्चीकारी हो रही थी राजपथ बहुत बढ़िया था, उस किले पर सूर्य-चन्द्र विश्राम-सा करते थे तथा रत्नों के कारण सूर्य किरणें अनेक रंगो को बदलती रहती थी। भूषण ने वाल्मीक तथा व्यास द्वारा रामायण-महाभारत रचने पर वाणी पवित्र मानी है परन्तु अन्य कवियों ने कलियुग के राजाओं का चित्रण कर वाग्देवी को अपवित्र कर दिया था। अतः भूषण ने शिवाजी का वर्णन कर वाणी को फिर शुद्ध रूप दे दिया है। इस प्रकार से भूषण ने बड़ा ही उत्कृष्ट एवं मौलिक चित्रण करके राष्ट्रोद्धार का महत्वपूर्ण कार्य कर डाला था।

शिवाजी की विजयों से औरङ्गजेब ने जो भ्रष्टता देश में भर दी थी उसका रूपान्तर हो गया और सर्वत्र धर्म कार्य एवं वेद चर्चा होने लगी थी। यश का रूप सफेद माना गया है इसके आधार पर कवि ने बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। उस सफेदी में इन्द्र का ऐरावत हाथी सफेद होने से खो गया अतः वे ढूँढते फिरते हैं। विष्णु क्षीर समुद्र को खोज रहे हैं हँस आकाश गंगा को, ब्रह्मा हंस को, चकोर चन्द्रमा को महादेव कैलाश को तथा पार्वतीजी शिव को ढूंढ रही हैं कैसी सुन्दर उक्ति है।

अहमद नगर के किले में नौसेरी खाँ का शिवाजी से युद्ध हुआ था उस घमासान युद्ध में पक्ष-विपक्ष का पता नहीं लगता था तब भूषण

उसकी पहिचान बतलाता है कि शिवाजी के वीर हाँक लगाते बढ़ते और मोर लोग हटते देखकर पहिचाने जा सकते थे।

व्याजोक्ति के सहारे से भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि सरजा ने बादशाह के उमरावों को लूट लिया इससे वे दीन हो गये और विदेश चले गये। जब लोग पूछते हैं कि दक्षिण नाथ शिवाजी ने यह दशा कर दी है क्या? तब वे उत्तर देते हैं कि हमीं दुनियाँ से उदासीन हो गये हैं।

भूषण ने बहादुर खाँ की बहुत ही मट्टी पलीत करवाई है। सूबेदारी पद पर उसे युद्ध संचालन के योग्य न मानकर बकरी की पीठ पर हाथी का झप्पर रख देना मानते हैं। इस प्रकार से "कालि के जोगी कलींदे के खप्पर" की कहावत कह कर वे मज़ाक उड़ाते हैं।

भूषण ने सूरत की लूट का विस्तार से वर्णन किया है। साथ ही शिवाजी के दान का वर्णन कर 'लाल' रत्न पाने से दिन और नील मणि पाने से रात का दृश्य सामने आ जाना दिखलाया है।

कवि शिवाजी को विष्णु रूप में प्रतिपादन करने के लिये कहता है और बतलाता है कि हिरनाकुश को मारने के लिये नृसिंह अवतार हुआ था, रावण को मारने को राम हुए थे कंस-वध के लिये कृष्ण हुए इसी प्रकार म्लेच्छों को वध करने के लिये शिवाजी का अवतार हुआ है, राम को रघुकुल सरदार कृष्ण को वसुदेव कुमार तथा शिवाजी को अवतार कहकर अपनी भावना का अच्छा समन्वय किया गया है।

भूषण ने छः अमृतध्वनि छन्दों में डिंगल प्रणाली पर शिवाजी की प्रशंसा की है जिनमें सूरत तथा भड़ौंच की विजय, दिलेर खाँ एवं बहादुर ख़ाँ को हराले मोहकम सिंह तथा राजकुमार किशोर को कैद करने तथा मुगलों पर अन्य युद्धों की विजयों का बड़ा ही ओजस्विनी भाषा में महत्त्वपूर्ण चित्रण किया है। इन छन्दों में जितनी तीव्रता है उतनी ही भयंकरता भी है साथ ही ऐतिहासिक चित्रण सटीक रूप में अङ्कित किया है तथा परनाला का किला और बहलोल पर विजय का गहरा एवं भावपूर्ण वर्णन किया है।

फिर कवि शत्रुओं के घरों की दुर्दशा चित्रित कर उनमें बन्दर, बाघ, बिलार, भेड़िया, बाराह, भालू, नीलगाय, लोमड़ी, हाथी, गैंडे, गोहें आदि का निवास अङ्कित करता है। इसी प्रकार अन्य छन्दों में तुरुमुती तीतर, कूकर हिरन, पाढ़े, खरगोस आदि का निवास तहखानों आदि में बतलाता है।

इस प्रकार का अत्यन्त आकर्षक, महत्वपूर्ण एवं ओजस्वी वर्णन कर भूषण ने संवत् १७७३ वि० में शिवराज भूषण की समाप्ति की है।

फुटकर कविताएँ

भूषण कवि अपने राष्ट्रीय संगठन के लिये सारे भारत में चक्कर लगाते रहे थे, अतः उन्होंने अनेक राजाओं से भेंट की थी। उनमें से बहुतों की प्रशंसा में इस महाकवि की रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं। इनमें से छत्रसाल, सवाई जयसिंह तथा साहू के विषय में जो रचनाएँ मिलती हैं, उनसे विदित होता है कि इनमें भूषण का विश्वास और प्रोत्साहन दोनों हो पर्याप्त मात्रा में मिला हुआ था।

छत्रसाल महाराज ने तो उनको पालकी में कंधा भी लगाया था, उसका कारण भी था। जिस परिस्थिति में भूषण ने छत्रसाल की सहायता की थी उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन का यही रूप हो सकता था। क्योंकि भूषण को धन की कमी न थी जिसे देकर वे उन्हें पुरस्कृत करते, अतः इस मार्ग का अवलम्बन लेना पड़ा था। इस महाराज की प्रशंसा भी कवि ने बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में की है। कहीं वे भुजाओं को शेषनाग और सांग को सर्पिणी के रूप में अंकित कर शत्रु सेना को भक्षण करने का कथन करते हैं। कहीं उस सांग को मछली के रूप में चित्रित कर बख्तरों के भीतर ऐसा घुसते हुए वर्णन करते हैं जैसे मछली पानी के प्रवाह में पार हो जाती है। इस प्रकार से छत्रसाल की बरछी का कवि ने बहुत ही आकर्षक वर्णन किया है।

इसी प्रकार से महाराज की तलवार को भी महत्वपूर्ण कहा है। उसे वर्षा के बादलों में बिजली का रूप दिया है। शत्रु पर इसकी कड़क भयानक आतंक भर देती है जिससे खान, राव, राजा आदि त्रस्त हो जाते हैं। फिर कवि कहता है कि अबुल समद आदि सेनापति समुद्र के समान हैं जिसे बड़वानल रूपी तेग बिल्कुल भस्म कर डालता है। इसी प्रकार के अनेक वर्णन मौलिक रूप में मिलते हैं। छत्रसाल की धाक का भी कवि ने बहुत

आकर्षक वर्णन किया है। साथ ही भूषण को जो हाथी-घोड़े आदि भेंट किये उनका भी कवि ने बहुत प्रभावशाली कथन किया है। इसके सिवाय साहू और छत्रसाल में किसे अधिक प्रशंसनीय मानूँ। इस दुविधा से वे अपने को नहीं निकाल पाये हैं। कहीं कवि छत्रसाल द्वारा मोहम्मद अमी ख़ाँ की सेना और खजाना लूटने का उल्लेख करता है और कहीं चकत्ता औरंगजेब पर उसके आतंक का चित्रण बड़े ही आकर्षक ढंग से करता है। भूषण ने छत्रसाल द्वारा मरहठी सेना के प्रवाह को बुन्देलखंड में घुसने से रोकने की भी चर्चा की है तथा पठानों को उसके द्वारा भयत्रस्त करने का भी विशद् वर्णन मिलता है। ये रचनाएँ उत्तेजक एवं उत्साहवर्द्धक दोनों रूप में कही गई हैं। शिवाजी की प्रशसा के छन्द शिवराज भूषण और शिवा बावनी में तो वर्णित हैं ही अन्य अनेक छन्दों में भी कवि ने शिवाजी की प्रशंसा की है जिनमें से कुछ खोज में प्राप्त हो चुके हैं।

बाजीराव पेशवा ने भी दिल्ली का आम-खास जला डाला था। परन्तु इसे भी भूषण ने शिवाजी के नाम पर कथन किया है इसे लेखक तथा पाठक ठीक रूप में नहीं समझ पाते अतः उसे शिवाजी के दरबारी कवि के रूप में मानने की भूल कर बैठते हैं। वे भूषण और शिवाजी के सम्बन्ध को भी नहीं अनुभव कर पाते इसी से भूल हो जाती है। अनेक छन्दों में कवि ने शिवाजी को औरंगजेब के लिये इसी रूप में कहा है जैसा सिंधु के लिये अगस्त, चूहे को बिलाव, एवं रावण के राम हैं।

कहीं कवि औरंगजेब, एवं बीजापुर, गोलकुंडा नरेशों को त्रिपुरासुर बना कर शिवाजी को शिव के रूप में अंकित करता है। कहीं हबशी और फिरंगियों पर उसकी धाक का वर्णन करता है। कहीं हाथी घोड़ों के सिर उसकी तलवार कलींदे से तरासती है। कवि ने काश्मीर, काबुल, उड़ीसा कर्नाटक और कलकत्ता पर शिवाजी की धाक आँधी-सी हहराती है इस का ओजस्वी वर्णन किया है।

भूषण ने भिन्न-भिन्न जातियों के स्वभाव का भी अच्छा चित्रण किया है। रूसियों में प्रबलता होती है, खुरासान वाले तलवार के धनी होते हैं।

इगलैण्ड वालो मे कूटनीति अधिक है। चीन वालो मे उद्योग एवं हुनर की विशेपता है। रूस वालो मे अभिमान की मात्रा अधिक मानी जाती है हबशियो मे डरपोकपना अधिक होती है। अरबियो मे भलाई करना तथा शान और अदबियत ईरान मे विशेप है, इसी प्रकार से हिन्दुओ मे साहस और शिवाजी मे वीरता विशेप रूप मे दिखलाई देती है। भूषण ने हिन्दुओ की पारस्परिक फूट का विशेप रूप मे वर्णन किया है और उसे घातक बतलाया है। भूषण ने पेशवाओ की चर्चा वेद-पाठी के रूप मे भी की है।

कवि ने रावराजा बुद्धसिह की प्रशसा मे भी दो छन्द कहे है जिसमे से एक मे उसकी तलवार की और दूसरे मे कटारी की प्रशसा की गई है।

भूषण ने शृगार और वीर रस का एकत्र रूपक देकर बड़ा ही प्रभाव-शाली चित्रण किया है। बादलों को कवच रूप मे, पवन को सवारी रूप मे, बिजली को तेग के समान कहा है, जो कि नारियो के मान को नाश कर देता है। बगुलो की पाति पैदल सेना के रूप मे तथा बादलो के ध्रुवो को झंडियों के समान कहा गया है। इस प्रकार से कवि स्त्रियो को मान त्याग कर पति से मिलने की सलाह देता है।

भूषण ने सवाई जयसिह के पूर्वजो की भी प्रशंसा की है और बतलाया है कि अन्य सभी राजा-बादशाहों द्वारा सम्मान पाते है परन्तु मान-सिह तथा उनके वंशजों से बादशाह को सम्मान मिलता है। मान से अकबर को, जहाँगीर को महासिह से, शाहजहाँ ने मिर्जा जयसिह से तथा औरंगजेब ने रामसिह से सम्मान पाया था।

इसी प्रकार से कवि ने सवाई जयसिंह के कार्यों की भूरि-भूरि प्रशसा की है। उसकी वेध-शालाए जो उसने दिल्ली, उज्जैन, जयपुर और काशी मे बनवाई थी उनका अच्छा वर्णन किया है। जयपुर नगर बसाने, उसके उत्कृष्ट सौन्दर्यमय शरीर तथा अपने राज्य के उद्धार का भूषण ने परिष्कृत रूप मे वर्णन किया है।

इसी प्रकार से कवि ने मैड़ू के राजा अनिरुद्ध सिह की भी प्रशंसा

की है। यह एक बहुत छोटा-सा राजा था फिर भी उसके आमंत्रण पर भूषण उसके दरबार में गये थे और प्रशंसा की थी।

भूषण ने शृंगार रस का भी विस्तार से चित्रण किया है। फुटकर छन्दो में उनकी बहुत-सी रचनाएँ खोज में मिल चुकी हैं जिनसे उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है।

कवि ने देह के नाशवान को चर्चा करते हुए पुनर्जन्म में किस रूप में रहें इसकी चिन्ता त्याग कर इससे उत्कृष्ट रूप और परोपकार में संलग्न रहने की शिक्षा दी है। अतः धन की चिन्ता न कर उक्त कार्यों में निरत रहना चाहिए। तथा राजाओं का निर्माण कर उन्हें ऊँचा उठाना लक्ष्य रखना चाहिए। मृत्यु के पश्चात् नगों की तुच्छता स्पष्ट है।

भूषण ने हिन्दू-मुसलिम मेल पर सबसे अधिक बल दिया है। इसके लिये वे शिवाजी का आदर्श लेते हैं जिसने मसजिद, कुरान एवं मुसलिम स्त्री को संरक्षण दिया था और सेना को इनकी पवित्रता कायम रखने के लिये आज्ञा दे रखी थी। वह औरंगजेब को, बाबर, अकबर, हुमायूँ, शाहजहाँ तथा जहाँगीर के अनुसरण पर चलने को कहता है साथ ही इनके शासन को सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग के राजाओं में सबसे उत्तम माना है। इन्होंने प्रेम से राज्य शासन किया था इसी से वह इन्हें प्रशंसनीय कहता है। इसी प्रकार से बाजीराव गाजी की प्रशंसा करते हुए छत्रसाल की रक्षा और उद्धार करने की विशेष चर्चा की है।

भूषण हजारा के लोप हो जाने से इस महाकवि की बहुत-सी रचनाएँ अप्राप्त हैं। उनके कई ग्रंथ भी नहीं मिल रहे हैं जो अब तक मिले हैं उनसे उनकी रचना-योग्यता, प्रतिभा तथा राष्ट्रीय भावना का अच्छा परिचय मिलता है। राष्ट्रोद्धार के लिये ये अमोघ शस्त्र हैं।

भूषण कवि ने शृंगारिक रचनाएं भी पर्याप्त मात्रा में की थी। डा० पीताम्बर दत्त जी बड़थ्वाल ने एक भूषण कृत छन्दों का संग्रह प्रकाशित कराया है जो सब शृंगारिक हैं। इनमें २२ छंद नये हैं जो अबतक खोज में नहीं मिले थे। इनसे यह अवश्य प्रतीत होता है कि इनकी शृंगारिक

रचनाएं भी पर्याप्त मात्रा में होंगी। इन रचनाओं से विदित होता है कि ये किसी नायिका भेद के अंग हैं। उनकी दो रचनाओं का उल्लेख शिव सिंह सेंगर ने अपने सरोज में किया है। उन नामों से अनुमान होता है कि ये किसी नायिका भेद ग्रंथ के ही भाग होंगे। इनमें जो वर्णन मिलते हैं उनसे भी यही प्रतीत होता है कि ये नायिका भेद से ही लिये गये हैं।

यह संभव है कि भूषण ने प्रारंभ शृंगारी रचनाओं से ही किया हो क्योंकि तत्कालीन विचारधारा इसी रूप में बह रही थी जिनका इतना प्राधान्य था कि किसी को उससे बाहर निकलने का साहस नहीं होता था। फिर भी भूषण परिस्थिति से बाध्य थे। औरङ्गजेबी अत्याचार देश भर में तहलका मचाये हुए था। अतः भूषण के हृदय पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा और वे प्रतीकार का उपाय सोचने लगे थे जिसने भूषण को नया रूप दे दिया।

इन शृंगारी रचनाओं में न तो उतनी मौलिकता जान पड़ती है और न भाषा का उभाड़ ही महत्वपूर्ण दिखाई देती है। अब तक उनकी जितनी शृंगारिक रचना मिली है उससे हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं। भूषण पर यौवन से बुढ़ापे की ओर जाने के कारण शृङ्गार से वीर की ओर अग्रसर होने की बात ठीक नहीं जँचती जैसा कि डा० बड़थ्वाल ने चर्चा की है उस दशा में वे वैराग्य की ओर बढ़ सकते थे, वीर की ओर नहीं। अतः यह रूप-परिवर्तन परिस्थित के ही कारण हुआ प्रतीत होता है। फिर भी उनसे यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि उनकी प्रतिभा सर्वतोगामिनी थी अतः उनकी शृङ्गारमयी रचना भी अच्छी बन पड़ी है और वे नवरसों के उत्तम कवि थे। इस विषय में यह भी संभव है कि उनकी इस प्रकार की रचनाएं भी दूसरे कवियों ने अपना ली हों। जब कि एकमात्र वीर रस की रचनाओं को ही अन्य कवियों ने अपने नाम से प्रकाशित कर लिया है तब शृंगारिक कविताओं का हरण तो एक साधारण सी बात मानी जायगी।

इन शृंगारिक रचनाओं से जनता का अच्छा मनोरंजन नहीं हो

सकता और न वे उपयोगी ही मानी जा सकती है अतः उनके विषय में इस ग्रंथ द्वारा अधिक प्रकाश डालना उचित प्रतीत नहीं होता। फिर उससे कलुष भी बढ़ने की संभावना है। इनमें भी हम स्वयं दूतिका, विप्रलम्भ शृङ्गार, संयोग शृंगार आदि के वैसे ही चित्रण पाते हैं जैसे अन्य शृंगारी कवियों ने अंकित किये हैं। प्रोषितपतिका आदि के रूप भी वैसे ही मिलते हैं। फिर भी हम इससे भूषण की मर्यादा एवं महत्ता की हानि नहीं समझते। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि यदि वे वीर रस की रचना न करते तो उन्हें वह स्थान न प्राप्त हो पाता जो इन्हें आज मिला हुआ है तथा राष्ट्रोद्धारक के रूप में वे हमारे समक्ष न आ पाते। इससे हम भूषण को वीर रस की रचना को ही महत्व देते हैं। मुख्यतया एक आदर्श जीवन शिवाजी का सबके सामने रख कर राष्ट्र के जागरण का जो सन्देश उन्होंने दिया है वही हमारे हृदय में एक प्रमुख स्थान बनाता है। इसलिये उनके ग्रंथों की खोज तो सभी की होनी चाहिए परन्तु उनमें से ऐतिहासिक तथा आदर्श वीर रस की रचनाओं का प्रमुख स्थान मानना चाहिए। सम्पूर्ण रचनाएं प्राप्त होने पर हम उनके विकास-क्रम और राष्ट्रीयता की ओर अग्रसर होने की क्रमशः भावना को भी जाँच कर सकते हैं।

अभी भूषण संबंधी खोज बहुत अपूर्ण है। वे मोरंग, जोधपुर, चित्तौड़, बीजापुर, गोलकुंडा तथा अन्य कुछ राज्यों में भी गये थे। उनकी प्रशंसा के छन्द भी अवश्य होंगे परन्तु वे अभी तक अप्राप्त हैं। हिन्दी के किसी भी कवि की अपेक्षा भूषण की रचनाओं की खोज की अधिक आवश्यकता है क्योंकि यह राष्ट्र-निर्माण में हमारी अधिक सहायता कर सकती हैं। मुख्यतया साहित्यिकों एवं अन्वेषकों का सबसे अधिक उत्तर दायित्व है।

आलोचना

भूषण के विषय में विद्वानों में घोर मतभेद दिखलाई देता है। लगभग ३० वर्ष से इस महाकवि के बारे में भिन्न-भिन्न बातों को लेकर पक्ष-विपक्ष में सैकड़ों लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं जिनके आधार पर कुछ तथ्य निर्णयात्मक रूप में पाठकों एवं साहित्यकों के सम्मुख रखी जा सकी हैं।

पिछली कई शताब्दियों के अज्ञानांधकार में ज्ञान-दीपिका का ऐसा धुँधला प्रकाश अवशेष रह गया था कि विवेक नाम की वस्तु नाम को भी नहीं थी। इन्हीं कारणों से भारतीय इतिहास भ्रान्ति पूर्ण भावों का भाण्डार बन गया था। पिछले पचास वर्ष से ऐतिहासिक अन्वेषण ने कुछ प्रगति अवश्य की है, परन्तु साहित्यिकों एवं कवियों की ओर किसी ने दृष्टि पसार कर नहीं देखा। यहाँ तक कि अंग्रेज लेखकों ने भी प्रगतिशील एवं राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कवियों की घोर उपेक्षा की तथा साम्प्रदायिक एवं शृंगारिक रचनाओं पर ही अपनी ऊहापोह की भावना सीमित कर रखी थी। इसी कारण डा० ग्रियर्सन, ग्रीव्स, केयी, गार्सां द तासी आदि अंग्रेज तथा फ्रेंच विद्वान लेखकों ने महाकवि भूषण के नाम तक का उल्लेख करना उचित नहीं समझा था।

भूषण के जन्म और शिवराज भूषण के निर्माण-काल पर साहित्यिकों में गहरा मतभेद रहा है। भूषण तथा शिवाजी का संबंध और समकालीनता के विषय में भी यही बात पाई जाती है। भूषण के कौन-कौन भाई थे? उनका असली नाम क्या था? उनका जन्म-स्थान तथा निवास-स्थान के बारे में भी पाठकों में गहरी अज्ञानता भरी हुई है। उनके आश्रयदाता कौन-कौन थे! भूषण का उपाधिदाता कौन था? उसका समय क्या था? ये सब बातें आलोचना के लिये उपस्थित हैं।

३. आलोचना खण्ड

अतः इस खंड में इन्हीं सब विषयों पर विवेचनात्मक विचार उपस्थित करना अभीष्ट है। साथ ही भूषण की भाषा, भाव, तथा समाज सुधारक विचारधारा पर प्रकाश डालने का भी प्रयत्न किया जायगा। सबसे पहले यहाँ शिवराज भूषण के निर्माण-काल पर विचार करते हैं।

शिवराज भूषण का निर्माण-काल

शिवराज भूषण में वह प्रणाली ही नहीं है जो दरबारी कवि प्रयुक्त किया करते हैं, न इसमें इतिहास-क्रम है न घटना-चक्रों का कोई तारतम्य। जीवन चरित्र का क्रम-विकास भी नहीं दिखलाई देता अतः इस से दरबार में रह कर रचने की बात व्यक्त नहीं होती। दरबारी कवियों ने जो ग्रन्थ रचे हैं उनमें से विद्यापति ठाकुर रचित कीर्तिलता, केशवदास कृत वीरसिंह देवचरित, गोरेलाल कवि का छत्रप्रकाश, तथा सूदन विरचित सुजान चरित्र प्रमुख ग्रंथ हैं। इनमें घटनाओं का जैसा तारतम्य और जीवन-क्रम मिलता है शिवराज भूषण में वह बात नाम को भी नहीं है। इसमें तो अलङ्कारों के उदाहरण फुटकर रूप में मिलते हैं जिनमें प्रारम्भ की घटनाएँ अन्त में और अंतिम घटनाएँ प्रारम्भ या मध्य में वर्णित हैं। कुछ घटनाएँ तो शिवाजी की मृत्यु के पीछे की भी आ गई हैं। अतः इसके आधार पर भूषण को शिवाजी के दरबार में घसीट ले जाना सरासर अशुद्ध चित्रण होगा।

भूषण ने शिवराज भूषण के निर्माण-काल का दोहा भी रच दिया है। परन्तु भूषण को शिवाजी के दरबार में सिद्ध करने के लिये उस दोहे में अनेक परिवर्तन होते गये। इस समय जो पाठान्तर प्रस्तुत हैं वे इस प्रकार हैं —

(१) संवत सतरह तीस पर, सुचि बदि तेरसि मान।
भूषण शिव भूषण कियौ, पढ़ियो सुनौ सुजान॥
काशीराज के पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति, छंद ३८०

(२) शुभ सत्रह सै तीस पर, बुध सुदि तेरसि मान।
भूषण शिव भूषण कियौ, पढ़ियो सुन्यौ सुजान॥
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की प्रति, छंद ३६०
(३) संवत सत्रह तीस पर, सुचि वदि तेरसिभान।
भूषण शिव भूषण कियौ, पढ़ियो सकल सुजान।
साहित्य सेवक कार्यालय, काशी की प्रति
(४) सम सत्रह सैंतीस पर, सुचि बदि तेरसि भान।
भूषण शिव भूषण कियौ, पढ़ियो सुनौ सुजान॥
नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित प्रति

उक्त चारों निर्माण के दोहे भिन्न-भिन्न स्वरूपों का दिग्दर्शन कराते हैं। अब विचारना यह है कि इस दोहे के चार-पांच स्वरूप कैसे हो गये। इसके भीतर कौन-सी प्रधान भावना काम कर रही थी। इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने से प्रकट होता है कि परिवर्तन का मुख्य कारण भूषण को शिवा जी के दरबार में खींच ले जाना ही है।

शुद्ध और यथार्थ भाव को व्यक्त करने वाला दोहा चौथा है जिसमें भूषण की एक गम्भीर भावना निहित है। यह दोहा अबसे ७०-८० वर्ष पूर्व छपी प्रति से लिया गया है जिसे एक अति प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित किया गया है। इसमें श्लेष से दो भाव लिए गए हैं जो इस प्रकार से व्यक्त होते हैं —

सम = दो वस्तुओं की तुलना में समानता के लिये कहा गया है। जो 'सत्रह' के दोनों समयों में सम्मिलित होने तथा जन्म-काल एवं निर्माण काल के रूप को व्यक्त करने के लिये कहा गया है।

पर = पश्चात् तथा विरोधी रूप को प्रकट करता है। इस प्रकार से ३७ के पश्चात् ३८ संवत् जन्म काल को तथा ३७ के उल्टे ७३ निर्माण-काल को प्रकट करता है। तब इस दोहे का यह अर्थ होता है। संवत् १७३८ वि० में आषाढ़ बदी १३ रविवार के दिन शिव भूषण देवाधि देव महादेव ने भूषण कवि को उत्पन्न किया तथा श्लेष से

दूसरा अर्थ यह होता है कि संवत् १७७३ वि० में आषाढ़ बदी तेरसि रविवार के दिन भूषण कवि ने शिवराज भूषण की रचना की गणना करने एवं ज्योतिष के विचार से उक्त दोनों संवतों में आषाढ़ बदी तेरसि को रविवार पड़ता है। अतः यही चौथा दोहा सर्वतोभावेन शुद्ध है और यही भूषण का रचा माना जा सकता है। भूषण की शैली भी इसके अनुकूल है अतः यह निर्विवाद रूप से भूषण का रचा हुआ है, इसमें संदेह नहीं। अन्य दोहे ज्योतिष से अशुद्ध ठहरते हैं।

मिश्र-बंधुओं ने द्वितीय दोहे को शुद्ध माना है। परन्तु उसमें वार का नाम नहीं है अतः जाँच की कोटि में नहीं आता। सुधाकर द्विवेदी से पञ्चाङ्ग बनवा कर जो लीपा-पोती की गई है उससे भी तथ्य सामने नहीं आ पाई। पं० अम्बिका प्रसाद जी वाजपेयी ने महाराष्ट्र प्रणाली का सहारा लेकर उक्त पञ्चाङ्ग के आधार पर तीसरे दोहे को ठीक बतलाया था। परन्तु पञ्चाङ्ग ने तो मिश्र-बंधुओं द्वारा प्रतिपादित 'बुधवार' को श्रावण में बदी १३ को उक्त बुधवार ठहराया था, रविवार नहीं। अतः इस भूल से वाजपेयी जी का निर्णय भी अशुद्ध हो जाता है।

पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र 'त्रिनेत्र' ने शुचि का अर्थ ज्येष्ठ बतलाते हुए मेदिनी कोश तथा कुमार सम्भव का सहारा लिया था। परन्तु उक्त दोनों उदाहरणों में शुचि शब्द ग्रीष्म के अर्थ में आया है ज्येष्ठ के अर्थ में नहीं। अमर कोश ने स्पष्ट रूप से ही शुचि शब्द 'आषाढ़' के अर्थ में लिया है, देखिए—

वैशाखे माधवो राधो, ज्येष्ठे शुक्र शुचि स्त्वयम्।
आषाढ़े श्रावण तुस्यांनभः श्रावणि कश्च सः॥

इसमें उक्त 'शुचि' शब्द आषाढ़ के ही अर्थ में आया है। यदि कोई इसे ज्येष्ठ के अर्थ में लेना चाहे तो 'त्वन्ता था दिन पूर्वभाक्' के कथनानुसर इसका खुला निषेध किया गया है। अतः भूषण की वास्तविक भावना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। साथ ही निर्माण-काल के दोहे की परिवर्तित कल्पना भी साक्षात् रूप से सामने आ जाती है।

भूषण कवि सं० १७५८ वि० तक बनपुर ही में रहते थे जैसा कि मतिराम ने वृत्त कौमुदी में स्पष्ट उल्लेख किया है। शिवराज भूषण के निर्माण-समय सं० १७७३ वि० में वे तिकमापुर में चिन्तामणि एव मतिराम के साथ जा बसे थे। इस दोहे में गूढार्थ एवं श्लेष होने के कारण ही महाकवि भूषण पाठकों को सावधान करते हुए कहते हैं कि इसको अच्छे ज्ञाता ही समझने का प्रयत्न करें। प्रत्येक का काम नहीं। भूषण को शिवाजी का दरबारी कवि मानने तथा अर्थ की दुरुहता से इस दोहे में परिवर्तन होता गया। पहले 'सम' को 'शुभ' कर दिया गया उसके पश्चात् शुभ निरर्थक मानकर 'संवत्' धर दिया गया था। साथ ही मास और दिनों को भी खँचोटा गया पर सफलता किसी को भी नहीं मिली। वास्तव में निर्माण काल सन् १७७३ वि० ही ठीक है।

साहित्य के इतिहासकार सभी सं० १७३० वि० में शिवराज भूषण की रचना मानते आये हैं और भूषण को शिवा जी का दरबारी कवि भी। परन्तु किसी ने उसके इतिहास, वर्णित विषय, उनके आश्रयदाता तथा भूषण को उपाधि देनेवाले हृदय राम के बारे में जाँच-पड़ताल नहीं की।

कर्नाटक पर चढ़ाई

शिवराज भूषण के छन्द, २०७ में कर्नाटक पर शिवाजी के आक्रमण की चर्चा आई है। यह छन्द यह है —

लै परनालो शिवा सरजा, करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।
बैरिन के भगे बालक बृन्द, कहै कवि भूषन दूरि पहूँचे।
नाँघत नाँघत घोर घने बन, हारि परे यों कटे मनो कूँचे।
राज कुमार कहाँ सुकुमार, कहाँ विकरार पहार वे ऊँचे॥

इस छन्द पर विचार करने से पूर्व हमें कर्नाटक की सीमा निर्धारित कर लेनी चाहिए। 'सोर्स बुक आफ मराठा' नामक ग्रन्थ में पृ० १२५ पर लेखक बतलाता है, "कर्नाटक प्रान्त तुंगभद्रा और कावेरी नदियों के

बीच मे बसा हुआ है ।" तु गभद्रा पूर्व की ओर बहती हुई कृष्णा नदी मे जा मिली है । इसके पश्चात् कर्नाटक की उत्तरी सीमा कृष्णा नदी बन जाती है । अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कर्नाटक का उत्तरी भाग तुंगभद्रा और कृष्णा नदी से पूर्व तक फैला हुआ है और दक्षिण की ओर कावेरी नदी उसकी सीमा बनाती है ।

कैलूस्कर, तकाखव और राजवाड़े सभी इतिहास कार कर्नाटक के आक्रमण की पुष्टि इसी रूप मे करते हैं । किसी इतिहासकार ने इसके पूर्व शिवाजी के कर्नाटक पर आक्रमण की चर्चा नहीं की ।

'सोर्स बुक आफ मराठा' के पृ० ५८-६० मे कर्नाटक पर आक्रमण की चर्चा अवश्य आई है जिसका मुख्य कारण 'बिदनूर' को कर्नाटक प्रान्त मे समझने से ही ऐसा धारणा बनी जान पड़ती ह । परन्तु बिदनूर राज्य कौकण के दक्षिणी भाग मे अवस्थित है, इसे कर्नाटक प्रान्त मे मानना सरासर भूल है ।

शिवाजी का बिदनूर पर आक्रमण सन् १६५८ संवत् (१७१५ वि०) में हुआ था और परनाले का किला अफजल खा के मारे जाने के पश्चात् स० १७१६ वि० मे पहली बार विजय किया था । अतः भूषण कवि को मंशा कर्नाटक पर आक्रमण के बारे मे स्पष्ट ही सन् १६७६ के आक्रमण से ही माननी पड़ेगी जब कि तीसरी बार परनाला लेने के पश्चात् गोल-कुडा होते हुए वे कर्नाटक मे पहुँचे थे ।

छन्द पर विचार करते हुए प० कृष्ण बिहारी मिश्र तथा पं० विश्व नाथ प्रसाद मिश्र दोनो ने ही "आङ् मर्यादाभिविध्यो" सूत्र का सहारा लेते हुए 'तेनविना मर्यादा' के रूप मे ही 'लौं' का अर्थ कर्नाटक की बाहरी सीमा स्वीकार किया है । परन्तु अन्त मे "तत्सहितोऽभिविधि" सूत्र से बाध्य हो इन दोनो सज्जनो को ही यह मानना पड़ा कि "कर्नाटक लौं सब देस बिगूँचे" का अर्थ उसके भीतरी प्रान्त पर आक्रमण भी लिया जा सकता है ।

इसके साथ ही जब हम इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो इस घटना

का रूप स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि सभी इतिहासकार इस पर एकमत हैं कि तीसरी बार परनाले का किला जीतने पर ही शिवाजी ने सन् १६७६ ई० (सं० १७३३ वि०) में कर्नाटक पर चढ़ाई की थी जिसे भूषण ने डिंडिम घोष से उल्लिखित किया है।

त्रिनेत्र जी ने इस 'लौं' की व्याख्या करते हुए कुछ ब्रजभाषा के उदाहरण भी दिये हैं जिनमें एक यह है —

"है सखि संग मनोभव सोभट, कानलौं बान सरासन ताने।"

इसमें प्रयुक्त 'कानलौं' का अर्थ मर्यादा के रूप में कान की बाहरी सीमा मानकर इस आलोचक ने असावधानता का गहरा परिचय दिया है। तीर चलाते समय सदैव धनुष की प्रत्यञ्चा कान के पीछे तक ही पहुँचती है।

इस से स्पष्ट है कि उक्त छन्द में वर्णित घटना शिवराज भूषण के कल्पित निर्माण काल सं० १७३० वि० से तीन वर्ष बाद की है, अर्थात् सं० १७३३ की है। अतः इसे निर्माण-काल मानना युक्तियुक्त नहीं।

भड़ौंच पर आक्रमण

शिवराज भूषण के छन्द, ३५४ में भूषण ने सूरत की लूट के पश्चात् शिवाजी द्वारा भड़ौंच पर आक्रमण का उल्लेख इन शब्दों में किया है —

दिल्लिय दलन दबाय कर शिव सरजा निरसङ्क।
लूटि लियो सूरत सहर बङ्क क्करि अति डङ्क।
बङ्क करि अति डङ्क क्करि अस सङ्क कुलि खल।
सोचच्चकित भड़ौंच च्चलिय विमोच च्चख जल।
तट्ठट्ठइ मन कट्ठट्ठिक सोइ रट्ठ ट्ठिल्लिय।
सद्दसि दिसि भद्दवि भइ रद्द दिल्लिय॥

कुछ साहित्यिकों ने इस अमृत ध्वनि में वर्णित घटना सूरत के ही संबंध में मानी है। परन्तु भूषण ने प्रथम दो पंक्तियों में ही सूरत का वर्णन किया है शेष चार पंक्तियों में भड़ौंच पर आक्रमण का कथन किया गया है। इस छन्द का भावार्थ यह है —

दिल्ली की सेना को दबा कर शिवाजी ने निर्भयता से डंका बजा कर सूरत शहर को लूट लिया। इससे सम्पूर्ण औरङ्गजेबी सेना एवं सरदार भयत्रस्त हो गये तथा भडौंच अचम्भे में आकर चिन्ताग्रस्त हो गया। साथ ही आँसू बहाता हुआ चलाय मान होने लगा। जब शिवाजी की सेना बढ़ कर भडौंच के पास पहुँची तो ढेर के ढेर जनों को ठेल कर हटा दिया। इससे तुरन्त ही सर्वत्र दिल्ली का अपमान होने से वह बरबाद हो गई।

अतः स्पष्ट है कि इस छन्द में कवि ने भडौंच के आक्रमण का ही कथन किया है जो कि सूरत नगर को लूटने के पश्चात् ही हुआ था। भडौंच पर आक्रमण का उल्लेख तकाखब और कैलूस्कर ने अपनी रचना 'लाइफ आफ शिवाजी महाराज' के पृष्ठ ४११ पर किया है। वे लिखते हैं—

शिवाजी के सेनापति हमीरराव ने सन् १६७४ (सं० १७३२ वि०) में नर्मदा पार की और भडौंच में घुस गये और उसके आसपास का भाग अपने अधिकार में कर लिया। ग्रांटडफ ने भी इस की चर्चा अपने इतिहास में की है। यह घटना भी सन् १७३० वि० के पीछे की है।

रामनगर विजय

भूषण ने अपने ग्रन्थ में रामनगर विजय का भी चित्रण किया है। इस विजय के कारण शिवाजी को 'गाजी' की उपाधि भी दे डाली है। इसे भी आप भूषण के ही शब्दों में लीजिए—

जावलि बार सिगार पुरी औ,
जवारि कौ राम के नेरि कौ गार्जी।
भूषण भौंसिला भूपति तैं सब,
दूरि किये करि कीरति तार्जी।

तथा
शि० भू०, छन्द, २०६

भूषण भनत रामनगर जवारि तेरे,
बैर परवाह बहे रुधिर नदीन के।
शि० भू०, १५३

शिवाजी ने रामनगर को मई सन् १६७६ ई० (सं० १७३३ वि०) में लिया था।* शिवा जी नामक ग्रंथ में यदुनाथ सरकार पृ० २६२ के फुटनोट में लिखते हैं—

"RamNagar was not conquered even up to 1678."

इसी का उल्लेख 'सोर्स बुक आफ मराठा' हिस्ट्री भाग २, पृ० ६१६ पर इन शब्दों में किया है—

"Shivaji made a second raid on Surat and now lately has taken the Raja Shiva of Ram Nagar."

अतः स्पष्ट है शिवाजी ने संवत् १७३३ में ही रामनगर का विजय किया था और वहाँ के राजा को कैद कर गाजी की उपाधि प्राप्त की थी। इन प्रमाणों से निश्चय हो जाता है कि शिवराज भूषण का निर्माण काल सं० १७३० वि० अशुद्ध है।

बहादुर ख़ाँ और दिलेर ख़ाँ

औरंगजेब ने शिवाजी के मरने के पश्चात् सं० १७३७ वि० में बहादुर ख़ाँ को खानेजहाँ की उपाधि दी थी और उसे दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा था। भूषण ने निरुक्ति के उदाहरण में इसका उल्लेख किया है—

(१) "निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत वीर,
जोधन को रन देत जैसे भाऊ-खान को।
दिल दरियाव क्यों न कहैं कविराव तोहि,
तो में ठहरात आनि पानिप जहान को ॥*

(२) या पूना में मत टिको, खान बहादुर आय।
ह्याँई साइत ख़ान कौं, दीन्हीं शिवा सजाय ॥
शि० भू०, ३४०

---

*देखिये, ग्रेट शिवाजी, पृ० ३५० । * शिवराज भूषण छन्द ३४८ ।

(३) गतबल खान दलेल हुव, खानबहादुर मुद्ध।
शि० भू०, ३५७

(४) दीनों मुहीम को भार बहादुर,
छागौ सहै क्यों गयन्द को झप्पर।

....
कालि के जोगी कलींदे के खप्पर।

फुटकर छन्द ४५

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि बहादुर ख़ाँ के विषय में भूषण की एक विशेष राय थी और वे उसे शिवा जी के मुकाबिले में अत्यन्त तुच्छ मानते थे।*

निरुक्ति के उदाहरण में खान और जहान शब्द खानेजहाँ के लिये ही प्रयुक्त हुए हैं जो बहादुर ख़ाँ की उपाधि थी। इसका उल्लेख पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि ने अपनी भूषण ग्रंथावली के पृष्ठ ३२० पर इस प्रकार से किया है—

खान = मुसलमानों की एक उपाधि। खाँजहाँ बहादुर (दे० बहादुर खाँ)।

इसी ग्रंथ के पृष्ठ ३२६ पर जहाँ बहादुर की व्याख्या करते हुए उक्त सम्पादकों ने लिखा है—

जहाँ बहादुर = खाँ जहाँ बहादुर (देखो-बहादुर ख़ाँ)

अतः स्पष्ट है कि शिवराज भूषण में कवि ने शिवाजी के जीवन-काल की ही घटनाएँ नहीं ली, वरन् उसके मरने के पश्चात् की भी कुछ बातें इसमें आ गई हैं।

भूषण कवि ने दिलेर ख़ाँ सूबेदार की भी हार की चर्चा शिवराज

*औरंगजेब, जिल्द ४ पृ० १३१, तथा औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, जिल्द ४, पृ० २४३

भूषण में की है जैसा कि इस ग्रंथ के छन्द नं० ३५७ में उल्लिखित है।

दिलेर ख़ाँ* को शिवा जी ने सं० १७३२ वि० में हराया था। शिवराज भूषण में एक छन्द ऐसा भी है जिस में उल्लिखित घटनाएँ शिवाजी की मृत्यु के बहुत पीछे की हैं। वह छन्द यह है—

उत्तर पहार बिधनोल खँडहर झार—
खंडहू प्रचार चारु केली है बिरद की।
गोर गुजरात और पूरब पछांह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद की।
भूषन जो करत न जाने बिन घोर सोर,
भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की।

शि० भू०, छं० १५६

इस छन्द में भूषण ने समासोक्ति का उदाहरण देते हुए शिवा जी को सिंह के रूप में प्रशंसा की है जिस सिंह (शिवा जी) का यश उत्तर पहाड़ों, बिदनूर, तथा उड़ीसा तक फैला हुआ है तथा जिसने बंगाल और गुजरात की पूर्वी-पश्चिमी जंगली बस्तियों को भी उजाड़ डाला था। यही नहीं, जो हाथी रूपी बादशाह सदैव खूब जोर-शोर दिखाता था वह भी अपनी ऊँचाई (महत्ता) को खो बैठा इस प्रकार से (शिवाजी) शेर से शत्रुता कर गजराज (बादशाह) ने अपने मद को नष्ट कर दिया। इस प्रकार से भूषण ने इस छन्द द्वारा अनेक महत्वपूर्ण भावनाओं का उद्घाटन कर दिया है। बंगाल और गुजरात प्रान्तों को साहू के समय में चिमनाजी तथा पेशवा ने विजय किया था। भूषण कवि ने ही शिवा जी के यश को मोरंग, कुमाऊँ तथा गढ़वाल तक पहुँचाया था। बिदनूर को शिवाजी ने सं १७१६ वि० में जीता था। इस छन्द में वर्णित अधिकांश

---

*यदुनाथ सरकार, शिवाजी पृ० २६२ : भूषण विमर्श, पृ० ६८

घटनाएं शिवाजी की मृत्यु के भी बहुत पीछे की हैं जिन्हें कवि शिवाजी के नाम पर व्यवस्थित करता है। इसका कारण हम शिवाबावनी पर विचार करते हुए पूर्व ही बतला चुके हैं। कि महाकवि भूषण महाराष्ट्र प्रान्त का उत्कर्ष शिवाजी की देन मानते थे। अतः साहू तथा पेशवा की विजयों को उन्होंने शिवाजी के नाम पर अभिहित किया है। इस कारण से भी साहित्यिकों ने भूषण की अवस्था, आश्रयदाता और शिवा जी से संबंध के विषय में गहरा धोखा खाया है।

रायगढ़ और सितारा

शिवराज भूषण में कवि ने रायगढ़ का विस्तार से चित्रण किया है तथा उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। परन्तु शिवा बावनी तथा अनेक फुटकर छन्दों में भूषण ने सितारा के ही उत्कर्ष का वर्णन किया है। शिवराज भूषण का एक भी छन्द ऐसा नहीं है जो शिवा जी से संबंध न रखता हो। परन्तु शिवा बावनी में शिवाजी, साहू जी, बाजीराव पेशवा, रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह, तथा हृदयराम सुरकी, को प्रशंसा के भी छन्द आपको मिलेंगे तथा उस समय की राजधानी के रूप में सितारा का ही उल्लेख आया है; यथा—

"तारे लागे फिरन सितारा गढ़धर के।" शि० बा०, छन्द ७

" बाजत नगारे ये सितारा गढ़धारी के।" शि० बा०, छंद २८

तथा—**"दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की।"** शि० बा०, छंद ३६

इन दोनों बातों के अन्तर को जब तक भली प्रकार से समझ नहीं लिया जाता, तब तक इन छन्दों के समझने और उनका तारतम्य बैठाने में बहुत उलझन होती है। फलस्वरूप पाठक गण यथार्थ तथ्य की ओर नहीं पहुँच पाते।

छत्रपति साहू संवत् १७६४ में औरंगजेब की जेल से छूटे थे। उसके पश्चात् हो वे सितारा की गद्दी पर बैठे थे और तभी उन्होंने इसे अपनी राजधानी बनाया था। भूषण भी यहीं साहू और बाजीराव पेशवा से मिले थे। इसी आधार पर उन्होंने कहा था—

"भूषणजू खेलत सितारे में सिकार साहू,
संभा कौ सुअन जातें दुअन सचै नहीं।"
शिवा बावनी, छन्द ४८

तथा—"बाजीराव बाज़ की चपेट चंग चहूँ ओर,
तीतर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं।"

इन उदाहरणों से हम सरलतया भूषण की विचार सरणी का अनुमान कर सकते हैं। जिसमें साहू और बाजीराव को आश्रयदाता के रूप में तथा शिवाजी को आदर्श के रूप में लिया गया है। इसी से इस कवि ने इन्हें अवतार रूप में अंकित करने का प्रयत्न किया है और स्पष्ट तया विष्णु का अवतार बतलाया है। भूषण द्वारा स्वराज्य स्थापन के लिये इसी प्रणाली का अवलंबन लिया गया है और यही भावना उनकी सफलता की कुंजी समझनी चाहिए।

उपर्युक्त विवरणों से यह बात स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने शिवराज भूषण की रचना सं० १७७३ वि० में की थी। इसीलिये इस ग्रंथ में कई घटनाएँ शिवाजी के जीवन के अंतिम काल की तथा मृत्यु के बाद की भी आ गई हैं। यह ग्रंथ सितारा में ही लिखा गया था और शिवा बावनी के ५२ छन्द उससे पहले ही निर्मित हो चुके थे। अतः शिवराज भूषण का निर्माण-काल संवत् १७७३ वि० ही युक्तियुक्त है तथा भूषण के कथन से भी इसकी पुष्टि हो जाती है।

शिवा बावनी

शिवा बावनी की रचना एक विशेष घटना का द्योतक है जिसमें राष्ट्रीय भावना के रूप में भूषण ने साहू के सामने उत्तरी और दक्षिणी नरेशों की प्रशंसा करते हुए शिवाजी का आदर्श चित्रण किया है और इसी आधार पर राष्ट्र-निर्माण की योजना प्रस्तुत की थी। इसमें भी ऐतिहासिक चित्रण जो शिवाजी के नाम पर अभिहित किया गया है उसमें से अधिकांश साहू और बाजीराव पेशवा की विजयों से संबंध रखती हैं। इसे भी आप भूषण के ही शब्दों में अवलोकन कीजिये—

(१) मालवा उज्जैन भनि भूषण भेलास ऐन,
सहर सिरोंज लौं परावने परत हैं।
शि० बा०, छन्द १५

तथा—(२) भूषण सिरोंज लौं परावने परत फेरि,
दिल्ली पर परत परंदन की छार है।
शि० बा०, छन्द ४९

शिवाजी के समय में उज्जैन, भेलसा व सिरोंज में मरहठों की छावनी कभी नहीं रही इन्हें साहू और बाजीराव पेशवा ने सं० १७६९ वि० में सैनिक कैम्प बनाया था, तभी वे उत्तर की ओर बढ़े थे और दिल्ली में जा धमके थे। यही नहीं उत्तरी भारत की भी कई घटनाएँ इसमें उल्लिखित हैं; यथा—

(१) रंकी भूत दुवन करंकी भूत दिग दंती,
पंकी भूत समुद सुलंको के पयान ते।
शि० बा०, छन्द ५०

(२) जादिन चढ़त दल साजि अवधूत सिंह,
तादिन दिगंत लौं दुवन दाटियतु हैं।
शि० बा०, छन्द ५१

(३) रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै खाक,
खादर लौं झारै ऐसी साहू की बहार है।
शि० बा०, छन्द ४६

(४) बाजीराव बाज की चपेट चंग चहूँ ओर,
तीतुर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं।
शि० बा०, छन्द ४८

इन छन्दों में हृदयराम सुरकी और अवधूतसिंह के आक्रमण की चर्चा है जो राज्योद्धार के लिये सं० १७६८ वि० में किया गया था तथा साहू और बाजीराव पेशवा की विजयों का उल्लेख है जिन्हें भी इन्होंने उन्हीं दिनों प्राप्त की थीं। इन्हीं छन्दों से प्रभावित हो साहू ने

भूषण को अपना दरबारी कवि बनाया था और उन्हें खूब पुरस्कृत किया था। इसके बाद ही शिवराज भूषण की रचना हुई थी।

'शिवा बावनी' नाम पड़ने का कारण यही है कि इसके अधिकांश छन्द शिवाजी की प्रशंसा में कहे गये हैं और शिवाजी का आदर्श राष्ट्र को देने के लिये ही भूषण ने सारे भारत का दौरा किया था। इसी भावना के कारण भूषण कह बैठते हैं —

मोरंग कुमाऊँ औ पलाऊ बाधे एक पल,
कहाँ लौं गनाऊ जेऽव भूषन के गोत हैं।

शि० बा०, छन्द ४२

यहाँ पर भूषण कवि अपने द्वारा प्रवाहित आदर्श शिवाजी के चित्रण के सहारे मोरंग और कुमाऊँ की रक्षा का उल्लेख करते हैं जिन्होंने गुरिल्ला युद्ध करके औरंगजेब से अपने राज्य वापिस ले लिये थे। शिवा बावनी की रचना इसी भावना को लेकर हुई है और पूर्णतया उत्तेजक विचारों एवं सदा सजीव चेतना भरने में ये भली भाँति समर्थ हैं। भूषण का इनकी रचना में उद्देश्य भी यही था कि राष्ट्र को जागृति प्रदान कर उद्बुद्ध कर दिया जाय। इस बावनी की रचना ऐतिहासिक तथ्य और निर्माण-काल के बारे में भी अच्छा प्रकाश डालती है।

शिवा बावनी में जो तथ्य निहित है उसकी ओर ध्यान न देने ही से साहित्यिकों ने कुछ किंवदन्तियाँ गढ़ डाली हैं। किसी ने कहा कि एक ही छन्द ५२ बार कहा गया है। किसी ने उसे १८ बार कहना माना तथा किसी ने उसके छन्द बदलने प्रारम्भ कर दिये इस प्रकार से इस बावनी की ऐतिहासिकता लोप करने का प्रयत्न किया गया; परन्तु यथार्थता प्रकट हुए बिना न रह सकी।

शब्द-साक्ष्य

भूषण ने कुछ शब्दों का ऐसा प्रयोग किया है जो अन्य द्वारा प्रयुक्त नहीं हुए थे, क्योंकि शब्दों का विकास और ह्रास सामाजिक जीवन में एक प्रमुख स्थान रखता है। ये शब्द कभी-कभी इतिहास की गुत्थी सुलझाने में भी सहायक बन जाते हैं। भूषण ने ऐसे कुछ शब्द अपने शिवराज भूषण में प्रयुक्त किये हैं। शिवराज भूषण का छन्द २२१ दृष्टिगत कीजिये—

> "सरजा *सवाई* कासों करि कविताई तव,
> हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।"

इसमें प्रयुक्त 'सवाई' शब्द एक विशेष भावना का द्योतक है। औरंगजेब ने यह उपाधि जयपुर नरेश जयसिंह को दी थी जिसने जयपुर बसाया था। इसी से वे 'सवाई जयसिंह' कहे जाते थे। परन्तु महाकवि भूषण औरङ्गजेब की दी हुई उपाधियों को कभी महत्व नहीं देते थे। इसी से आश्रयदाता होते हुए भी 'जयसिंह' के साथ इस उपाधि का कभी प्रयोग नहीं किया। इसके विरुद्ध इन्होंने उक्त छन्द में 'सवाई' की उपाधि शिवा जी के लिये प्रयुक्त की है।

इसी प्रकार से शिवराज भूषण में प्रयुक्त 'बखतबुलन्द' शब्द है जिसे भूषण ने अपने ग्रंथ के छन्द नं० १०९ में इस प्रकार से कथन किया है—

> "बासव से बिसरत विक्रम की कहा चली,
> विक्रम लखत वीर 'बखत बुलन्द' के।"

औरङ्गजेब ने संवत् १७५७ वि० में जयसिंह को 'सवाई' की उपाधि दी थी तथा 'बखतबुलन्द' की उपाधि नागपुर के गोंड राजा को सं० १७४० वि० में प्रदान की थी। अतः इन उपाधियों का महत्व जयसिंह और गोंड राजा को प्राप्त होने के पश्चात् ही बढ़ा था और

तभी भूषण ने इनका प्रयोग शिवाजी के लिये किया था। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस ग्रथ का निर्माण सं० १७५७ के पश्चात् ही हुआ है, पहले नहीं। इससे पूर्व किसी कवि ने 'सवाई' शब्द विशेषण रूप में अथवा नाम एवं उपाधि रूप में कभी प्रयुक्त नहीं किया था। इस दशा में इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। 'बखत बुलन्द' शब्द का प्रयोग मतिराम ने अपने अलङ्कार पचासा में तथा केशवदास ने वीरसिंह देव चरित में भी किया है। फिर भी भूषण का प्रयोग रूपकातिशयोक्ति के रूप में होने से अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। आशा है विद्वत्समाज इसकी महत्ता को स्वीकार करेगा।

भूषण के सम्मुख घटित घटनाओं का अभाव

शिवा जी के दरबार में भूषण के जाने का समय प्राचीन परिपाटी वाले सं० १७२७ वि० तक मानते हैं। इस बीच में कई महत्वपूर्ण घटनाएँ दक्षिण में घटीं थीं। इनमें से निम्नलिखित बहुत ही प्रसिद्ध हैं—

(१) शिवाजी छत्रसाल भेंट: सन् १६७१ (सं० १७२७ वि०) था।

(२) भूपति सिंह पँवार का पुरन्दर के किले में मारा जाना: सन् १६७० ई० (संवत् १७२७ वि०)

(३) रजोउद्दीन ख़ाँ को किले में कैद कर देना: सन् १६७० ई० (संवत् १७२७ वि०)

(४) महावत ख़ाँ की हार: सन् १६७१ ई० (सं० १७२८ वि०)

(५) विक्रम शाह से राज छीनना: सन् १६७२ (संवत् १७२९ वि०)

मिश्र-बन्धु महोदय शिवा जी के दरबार में भूषण का जाना सं० १७२८ वि० मानते हैं। परन्तु पीछे उन्होंने इस विचार को बदल कर सं० १७२४ वि० कर दिया है। इस संशोधन का आधार क्या है? इसे आपने व्यक्त नहीं किया है। इस दशा में घटनाओं की संख्या अत्यधिक हो जाती है जिनकी ओर इन पुंगवों ने ध्यान नहीं दिया है। शिवराज भूषण में कुछ घटनाएं अशुद्ध भी वर्णित है। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि

भूषण शिवाजी के दरबार में नहीं थे। उनका जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् हुआ है। इस सम्बन्ध में ऊपर पर्याप्त प्रमाण दिये जा चुके हैं। अशुद्ध घटनाएं ये हैं—

(१) शिवाजी का मिर्जा जयसिंह को २३ किले भेंट कर देना ऐतिहासिक तथ्य है। परन्तु भूषण ने ३५ किले देने का उल्लेख किया है।

(२) गुसलखाने का वर्णन भी इतिहास के अनुकूल नहीं है।

ये सब बातें इस बात को स्पष्ट कर देती हैं कि भूषण शिवा जी के दरबार में कदापि नहीं थे। वे तो आदर्श रूप में मान कर उस प्रणाली का विस्तार कर देना चाहते थे जिसके आधार पर शिवाजी ने औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिये थे। यही भूषण की विशेषता थी। आश्रयदाताओं की सूची भी इसी बात को व्यक्त करती है कि भूषण का एक भी आश्रयदाता शिवा जी के समकालीन नहीं है। केवल छत्रसाल अवश्य शिवा जी के समकालीन थे। परन्तु भूषण इनके दरबार में साहू के दरबार से लौट आने पर संवत् १७८० में गये थे जबकि बंगस के आक्रमण से त्रस्त होने पर भूषण से सहायता की याचना की थी। इसका वर्णन पहले दिया जा चुका है। शेष सब आश्रयदाता शिवाजी की मृत्यु के २५-३० वर्ष पश्चात् ही क्षेत्र में दिखलाई देते हैं। अतः भूषण और शिवा जी को समकालीन मान कर आश्रयदाता के रूप में चित्रित करना एक भयंकर ऐतिहासिक भूल थी जैसा कि ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो जाती है।

भूषण और शिवा जी

भूषण और शिवा जी में क्या संबंध था। इस पर साहित्यिक तो भ्रम में थे ही, इतिहासकार भी इससे उबर नहीं पाये हैं। भूषण और शिवाजी की समकालीनता पर पिछले पृष्ठों में पर्याप्त ऊहापोह की गई है। जब यह निश्चय हो गया कि ये दोनों महानुभाव समकालीन नहीं थे तबयह प्रश्न सामने आ जाता है कि इस महाकवि ने शिवाजी की प्रशंसा क्यों की?

इसका उत्तर यही है कि भारत में शिवा जी की ही एकमात्र सत्ता थी जिसने दक्षिण में औरंगजेब के पैर नहीं जमने दिये थे। वरन् उसके अत्याचारों को दबा कर राष्ट्र एवं हिन्दू समाज को शक्तिशाली बना दिया था शिवा जी की मृत्यु पर दक्षिण में भी उसने वही रूप ले लिया था जैसा उत्तर में प्रचलित था। भूषण इस इतिहास से परिचित थे। अतः उन्होंने शिवाजी की गुरिल्ला प्रणाली और पहाड़ी किलों द्वारा स्वरक्षा भावना का प्रसार कर उत्तर और दक्षिण में सर्वत्र राष्ट्र को उद्वेलित कर दिया जिसका स्पष्ट प्रभाव यह पड़ा कि औरंगजेबी सत्ता समाप्त हो गई और सारा देश उद्बुद्ध हो नव चेतना और स्फूर्ति से परिपूर्ण हो गया।

भारत में ईश्वरावतार के स्वरूप में राम, कृष्ण, नृसिंह आदि अवतारों के प्रति गहरी श्रद्धा वर्तमान थी। अतः उसी श्रद्धा का विस्तार करने तथा रावण, कंस, हिरण्यकश्यप आदि राक्षसों के समान औरङ्गजेब को कुचलने के लिये शिवाजी को ईश्वरीय शक्ति से युक्त बतलाना भूषण को अभीष्ट था। भूषण यह भी समझते थे कि कोरी श्रद्धा से काम नहीं चल सकता। अतः राम-कृष्ण को भी मानव तथा राजकुमार के रूप में चित्रित कर समाज को आदर्श शिवाजी के रूप में ला खड़ा करना उनका लक्ष्य था। यह तथ्य है कि मानव का अनुकरण मानव. करता है।

ईश्वर की सर्वशक्ति मत्ता अनुकरणीय नहीं होती। अतः उनके प्रति केवल श्रद्धा शेष रह जाती है। इसी से शिवाजी हमारे काम के रह गये क्योंकि वे ईश्वर नहीं बन पाये थे। ईश्वर रूप में प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं—

(१) "इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अंवतार याते,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।"
शि० भू०, १०३

(२) "तुम शिवराज ब्रजराज अवतारु आजु,
तुमहीं जगत काज पोषत भरत हौ।"
शि० भू०, ७५

(३) दशरथ जू के राम भे, बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के, श्री शिवराज भुवाल॥
शि० भू०, ११

(४) दारुन दइत हिरनाकुस विदारिवे कौं,
भयो नरसिंह रूप तेज विकरार है।
भूषन भनत त्यों ही रावन के मारिबे कौं,
रामचन्द्र भयो रघुकुल सरदार है।
कंस के कुटिल बल बंसन बिधंसिबे कौं,
भयो यदुराय बसुदेव कौ कुमार है।
पृथ्वी पुरहूत साहि के सपूत शिवराज,
म्लेच्छन मारिवे कौं तेरो अवतार है।
शि० भू०, ३५०

इन चारों छन्दों में भूषण ने शिवाजी को ईश्वरावतार रूप में अंकित किया है। परंतु चौथे छन्द में नृसिंह को तेज विकराल, रामचन्द्र को रघुकुल सरदार, श्रीकृष्ण को बसुदेवकुमार तथा शिवाजी को अवतार रूप में चित्रित कर अपनी आदर्श भावना और चारों को ही समान कक्ष में दिखलाने के लिये प्रति पादन शैली को यह स्वरूप दे दिया है इससे हम

सरलतया भूषण की भावना और वर्णन-शैली का अनुमान कर सकते हैं। इन छन्दों के अतिरिक्त और भी बहुत से छन्द हैं जिनमें शिवाजी को अवतार रूप में कथन किया गया है। फिर भूषण एक पद्य में कहते हैं —

"नव अवतार थिर राजै कृपान हरिगदा।

....

साहि तनै साहसिक भौंसिला सुरज बंस,

दासरथि राज तौलों सरजा वीर सदा।"

शि० भू०, ३८१

इस प्रकार से भूषण नव अवतार शिवाजी की तलवार को रामराज्य की भाँति प्रतिबिम्बित देखने के अभिलाषी हैं। अंतिम आशीर्वादी दोहा तो अत्यन्त महत्वशाली है उसका भी अवलोकन कीजिये—

पुहुमि फणनि रवि ससि पवन, जबलौं रहै अकास।

शिव सरजा तब लौं जियौ, भूषन सुजस प्रकास॥

शि० भू० ३८२

इस दोहे में भूषण शिवाजी के सुयश प्रकाश को जीवित रहने का आशीर्वाद देते हैं शिवाजी के लिये नहीं इस से भावना और भी स्पष्ट हो जातीहै कि कवि शिवाजी को किस रूप में अंकित करना चाहता है। तथा भूषण और शिवाजी में क्या संबंध था इसका भी दिग्दर्शन हो जाता है।

महाकवि भूषण ने शिवाजी का आदर्श राष्ट्र को देकर एक नवीन विचारधारा का ही प्रतिपादन किया था। इसी बात की महत्ता सार्वजनिक रूप में देश हितकर होने से अन्य कवियों के लिये भी सम्मान का साधन बन गयी थी इस विषय में भी भूषण इस प्रकार से स्पष्टीकरण करते हैं —

नृप समाज में आपनी होन बड़ाई काज।

साहि तनै सिवराज के, करत कवित कविराज॥

शि० भू०, २५८

तथा—

"को कविराज सभाजित होत, सभा सरजा के बिना गुन गाये।"

शि० भू०, १५३

इन उदाहरणों से उपर्युक्त विचार-सरणी बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है तथा महाकवि भूषण की व्युत्पन्न मति का भी अच्छा परिचय मिल जाता है जिसने राष्ट्रोत्थान और देशोद्धार के प्रयत्न में पूर्ण सफलता पाई थी। राजाओं के संगठन में यही भावना काम कर रही थी।

राजाओं के संगठन का कारण

अब प्रश्न यह होता है कि भूषण ने राजाओं का ही संगठन क्यों किया था। जनता में उत्साह भरने और उसमें सजीवता लाने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? इसका मुख्य कारण यह था कि तत्कालीन भारत में सामन्तशाही होने से राजाओं में ही भिन्न-भिन्न समाजों की सत्त केन्द्रीभूत हो रही थी। प्रजा, राजा को ईश्वर का अंश मानती और श्रद्धा से उनकी अभ्यर्थना करती थी। दो सहस्र वर्ष से भी अधिक काल से भारतीय राष्ट्र में जाति-गत संस्थाएं स्थापित होती चली आई हैं जिन्होंने क्रमशः सामंतशाही का रूप धारण कर लिया था। महाकवि भूषण ने इस प्रणाली से लाभ उठा कर तथा उसके आन्तरिक स्वरूप का अनुभव करके इसी पथ का अनुसरण किया था। अतः राजाओं के संगठन में वे प्रवृत्त हुए थे और उन्हीं के द्वारा जनता तक पहुँचने का प्रयत्न किया था।

इसी साधना को दृष्टि में रख कर उत्तरी भारत का नेतृत्व सवाई जयसिंह जयपुर नरेश को और दक्षिण का संचालक भूषण ने छत्रपति साहू तथा बाजीराव पेशवा को बनाया था। फिर भी सर्वोपरि सत्ता साहू की ही सर्वमान्य हो रही थी। अतः उसी को मूर्द्धन्य ठहराया था तथा जनता का नेतृत्व उसी को देने का प्रयत्न किया था। यद्यपि उस समय राजाओं में एक निश्चित और सुदृढ़ संगठन की भावना एवं राष्ट्रीय एक-रूपता का नितान्त अभाव था। फिर भी देश में औरंगजेब के विरोधी भावों का आश्रय लेकर राष्ट्रीयता की एक धारा अवश्य बह निकली थी। बहुत-से औरङ्गजेब विरोधी मुसलमानों का भी सहयोग मिलने से भारत में राष्ट्रीय चेतना का फूलता-फलता सजीव यौवन दृष्टिगोचर होने लगा था जिसका आरोपक एवं पोषक रूप में श्रेय महाकवि भूषण को है।

इस कवि के प्रयत्न से औरङ्गजेब द्वारा प्रताड़ित हिन्दू-मुसलमानों में पारस्परिक समाज-विरोधी भावनाओं का अवरोध हो रहा था तथा इसी आधार पर देश में शान्ति स्थापित हो रही थी। यह ठीक है कि भूषण ने औरङ्गजेब के प्रति घृणा फैला कर ही सामाजिक संगठन में सफलता पाई थी। परन्तु इस प्रचार में जातीय विद्वेष की गन्ध नाम को भी न थी। इसे तो कवि ने क्षेत्र तैयार करने का साधन मात्र बनाया था। परन्तु स्वराज्य को दृढ़ीभूत करने और उसमें स्थायित्व लाने के लिये उन्होंने राष्ट्रीयता का ही अवलम्बन ले रखा था। भूषण ने हिन्दुत्व का संकुचित रूप कहीं नहीं लिया। उनकी नीति उदार और हिन्दू-मुसलिम मेल पर आधारित थी। इसीलिये वे मुसलमानों द्वारा भी वैसे ही सम्मानित किये गये थे जैसे हिन्दू नरेशों द्वारा आदरणीय माने जाते थे। यही कारण है कि भूषण उनको भी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे और अकबर बादशाह की नीति को शिवा जी के आदर्श से भी अधिक महत्वपूर्ण समझते थे। यही नहीं इसे वे राम-कृष्ण के समकक्ष बिठाने में भी नहीं हिचके थे। शिवा जी उनके आदर्श थे।

उत्तेजना और उत्साह

भूषण की रचना में वीर रस के अंगों की अच्छी पूर्ति की गई है। उसके स्थायी भाव उत्साह से तो उनका पूरा साहित्य ही ओत-प्रोत है। इसके वर्ण्य विषय में इतनी गहरी और भावपूर्ण विवेचना की गई है कि देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है। जहाँ इस महाकवि ने वीर रस के अन्तर्गत नव रसों का निरूपण कर यह दिखला दिया है कि वीर रस ही रसराज की पदवी धारण कर सकता है और यही सब रसों में श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है। वहीं इस महान विभूति ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि किस अवसर पर हमें समाज को उत्तेजनात्मक एवं जोश दिलाने वाली रचना देनी चाहिए तथा स्थायी भाव के रूप में उत्साह वर्द्धन के लिये हमें कब और किस प्रणाली का अवलम्बन करना चाहिए।

महाकवि भूषण ने उत्तेजनात्मक तथा उत्साहवर्द्धक दोनों भावनाओं की विस्तार से रचना की है। उन्हें बहुधा युद्ध के लिये सन्नद्ध सैनिकों को जोश दिलाने के लिये अपनी उत्तेजक कविता का प्रयोग करना पड़ता था ताकि समर भूमि में व्यस्त सेनानियों के मन में कभी भी पश्चात्पद होने की भावना हृदय में न आवे। साथ ही उत्साह के सहारे नवजीवन भरने के लिए समाज को वीर रस अपेक्षित है जिसके बिना न तो समाज या राष्ट्र ही आगे बढ़ सकता है और न व्यक्तिगत उत्कर्ष ही प्राप्त हो सकता है। अतः वीर रस की स्थापना और उसके सहारे से ही हम राष्ट्र में उत्साह की सृष्टि कर सकते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उत्तेजक रचना द्वारा किसी कठिन समस्या को हल करने के लिये तत्काल पूरे राष्ट्र, समाज अथवा उसके किसी अंग को कार्य क्षेत्र में सन्नद्ध किया जा सकता है। यही वीर रस की सबसे बड़ी देन है।

अब इन दोनों भावनाओं के अन्तर को उदाहरणों द्वारा भी दृष्टिगत

कीजिये ताकि यह भली भाँति समझा जा सके कि भूषण ने किन स्थितियों में उत्तेजनात्मक रचनाओं का प्रयोग किया है और कब वे उत्साह वर्द्धन के लिये वीर रस का प्रयोग करते थे।

रीवां नरेश अवधूत सिंह की सेना के सम्मुख भूषण ने जो कवित्त सुनाया था उसे अवलोकन कीजिये—

जा दिन चढ़त दल साजि अवधूत सिंह,
ता दिन दिगन्त लौं दुवन दाटियतु है।
प्रलै कैसे धाराधर धमकैं नगारा धूरि—
धारा तें समुद्रन की धारा पाटियतु है।
भूषन भनत भुव डोल को कहर तहां,
हहरत तगा जिमि गज काटियतु है।
कांच से कचरि जात, सेस के असेस फन,
कमठ की पीठि पै पिठी सी बांटियतु है।

शिवा बावनी

इस छन्द में महाकवि भूषण राजा अवधूत सिंह की प्रशंसा करते हुए सेना को कितनी महान उत्तेजनात्मक भावना देते हैं जिसमें शत्रु-संहार के लिये प्रयाण करते ही उन पर गहरी धाक जा बैठती है। उसके नगाड़ों की धमक प्रलय के बादलों से समकक्षता करती है। उसकी सेना और सवारों आदि के चलने से उठी धूल इतनी अधिक है कि उससे समुद्र की धारा पट जाती है। उस सेना का संचालन भूकम्प-सा कहर ढा देता है। उसकी तलवार हाथियों को ऐसा काट डालती है जैसे धागा काट कर फेंक दिया जाता है जिनकी पुकार एवं भयंकर आवाज सर्वत्र भर जाती है तथा सेना के दबाव से शेषनाग के फन कांच की तरह कचर कर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और कच्छप भगवान पर पिठी-सी बँटने लगती है। इस वर्णन में कितनी गहरी उत्तेजक भावना भरी हुई है कि जोश में भर कर किसी भी महान कार्य को करने के लिये सन्नद्ध हुआ जा सकता है। मुख्यतया शत्रु को सम्मुख देख कर तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालने को जी चाहता है

और उसी प्रभाव में तानाजी मौलसरे की भाँति रस्सी के सहारे सिंहगढ़ के किले पर चढ़ कर उसे विजय करने में सफलता पा लेता है।

अब एक कवित्त महाराजा छत्रसाल की प्रशंसा में भी अवलोकन कीजिये इसमें भी कवि एक गहरी उत्तेजक भावना देकर समाज में जोश की धारा बहा देता है और सेना के बीच में तो यह विचाराधारा बारूद में पलोते का काम देती है। लीजिये—

सांगन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेदि खेदि,
समद सा जीता जो समद लौं बखाना है।
भूषण बुन्देल भनि चंपत सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियां ना है।
जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा,
महमद अमी खाँ का कटक खजाना है।
वीर रस मत्ता जाते कांपत चकत्ता यारो,
कत्ता ऐसी बाँधिये जो छत्ता बाँधि जाना है।

भू० ग्रं०, छत्रसाल प्रशंसा, छन्द ९

इस कविता में भूषण कवि ने अब्दुल समद की सेना पर विजय पाने का चित्रण किया है जिसे साँगों से पेल कर तथा तलवारों से पीछा करके हराया था जो कि समुद्र की तरह महान ठहराया गया था। फिर भूषण कवि कहते हैं कि बुन्देलों में सर्वश्रेष्ठ छत्रसाल चंपतिराय का सपूत है जिसकी धाक से औरङ्गजेबी सेना अत्यन्त आतंकित रहती थी। उस सेना का एक भी व्यक्ति ऐसा न था जिस पर छत्रसाल का भय न छाया हो इससे वे त्रस्त थे। फिर जंगल में घेर कर मोहम्मद अमी ख़ाँ की सेना तथा खजाना लूट लेने से उसका प्रभाव और भी अधिक शत्रु सेना पर पड़ा था अतः औरंगजेब इस वीर रस में मस्त रहने वाले छत्रसाल से इतना भयभीत होकर काँपता रहता था कि वह अपने को सम्हालने में भी असमर्थ था। इससे भी हम भूषण की इस जोशीली रचना के द्वारा समाज में उभाड़ दे सकते हैं और उसे सतर्कता देकर किसी

आवश्यकीय कार्य में संलग्न कर दे सकते हैं। इन्हीं रचनाओं से भूषण ने महान कार्यों में भी सफलता पाई थी और सेनाओं में एक उत्तेजक विद्युत-शक्ति भर देना इस कवि का साधारण-सा कार्य हो रहा था।

अब एक छन्द शिवा जी की प्रशंसा में भी लीजिये और देखिये कि महाकवि भूषण किस प्रकार से शिवा जी का आदर्श देकर सारे देश में उत्तेजना भर देने में सफली भूत होता है—

जिन फन फुतकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विष जाल ज्वाला मुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकार मद दिग्गज उगलिगो।
कीन्हों जेहि पान पय पान सो जहान कुल,
कोलहू उछलि जल सिंधु खल भलिगो।
खग्ग खगराज महाराज शिवराज जू को,
अखिल भुजंग मुगलद्दल निगलिगो।

शि० बा०, ४७

इस छन्द में कवि ने मुगल सेना को सर्प के रूप में चित्रित किया है जिसके विष की तीव्रता से बड़े-बड़े पहाड़ उड़ जाते थे और कच्छप भगवान की पीठ कमल के समान फट जाती थी। इस विष की ज्वाला में बड़े-बड़े ज्वालामुखी पर्वत भी गरकाव हो जाते हैं तथा उसकी लपट से दिशाओं के हाथी अपना मद उगल देते थे। जिसने सारे संसार को दूध की तरह पान कर लिया, बाराह भगवान भी उछलने लगे तथा समुद्र-जल खौलने लगा था ऐसे प्रबल मुग़ल दल रूपी सर्पराज को शिवा जी का खड्ग रूपी गरुड़ पूर्णतया निगल गया अर्थात् मुग़ल सेना को उसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस रचना में पौराणिक आधार लेकर कवि ने बड़ी ही मार्मिक और आकर्षक उत्तेजना भर देने का प्रयत्न किया है। इस भावना से कितना जोश सेना अथवा समाज में दिया जा सकता है, इसका अनुमान सरलता से नहीं लगाया जा सकता।

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी रचनाएं सद्यः फल देनेवाली होती हैं जो कि अत्यन्त आवश्यक कार्य आ पड़ने पर समाज में जोश भर कर उसे काम में संलग्न किया जा सकता है। यहाँ तक कि इस दशा में मृत्यु के भय की भी वह चिन्ता नहीं करता और युद्ध में कट मरने को सन्नद्ध हो जाता है। कैसी तीव्र भावना है!

अब कुछ उदाहरण ऐसे भी अवलोकन कीजिये जिन में उत्साह की भावना अधिक मात्रा में मिलती है जो कि वीर रस का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। साथ ही जिनमें क्षणिक उत्तेजना न होकर गहरा उत्साह प्रस्फुटित होता है। भूषण के अधिकांश छन्द इस कोटि के हैं जिनमें कुछ अंश उत्तेजक दिखलाई देता है तथा कुछ भाग स्थायी उत्साह के रूप में विकसित हुआ है। पहले हम उत्साह के रूप को यहाँ उपस्थित करते हैं जिससे साहित्यिकों को इस बात का पता लग जावे कि भूषण की रचना में वीर रस का कितना गहरा परिपाक हुआ है। देखिये—

सिह थरि जाने बिन जावली जंगल भटी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
भूषन भनत देखि भभर भगाने सब,
हिम्मति हिये में धारि काहु वै न हटक्यो।
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मद्गल अफजलै पंजा बल पटक्यौ।
ता विगिर ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सु आंकुस लै सटक्यौ।
शि० भू०, ६३

इस कवित्त में महाकवि भूषण ने गजरूपी अफ़जल ख़ां को आदिलशाह द्वारा जावली में शिवाजी रूपी शेर को पकड़ने के लिये भेजने में भूल बतलाई है क्योंकि वह स्थान सरजा (शेर शिवाजी) की माँद के समान था। जहाँ पर हाथी को जाने का साहस ही नहीं हो सकता। उस अफ़जल रूपी हाथी को सिंह रूपी शिवाजी ने पंजारूपी बघनखा से मार कर गिरा दिया। जब

वह मारा गया तो उसका साथी सेनापति याकूतखां रूपी महावत अपने सहायक अंकुशखां को लेकर बीजापुर को सटक गया। हाथी के साथ महावत और अंकुश का सामंजस्य कितने प्रभावशाली ढंग से किया गया है कि कवि की प्रशंसा किये बिना पाठक नहीं रह सकता। इसमें आदि से अन्त तक वीर रस का ऐसा क्रम विकास पाया जाता है कि कहीं पर एक शब्द की भी शिथिलता नहीं दिखलाई देती। साथ ही सिंह और गज के रूपक का जैसा सुन्दर निर्वाह इसमें हुआ है वैसा अन्यत्र शायद ही दिखलाई दे। इस छन्द में शाब्दिक टवर्गादि की अपेक्षा भावपूर्ण ओजमयी वीर रस से ओत-प्रोत विचारधारा देने का कैसा गहरा प्रयत्न किया गया है!

अब एक और उदाहरण लीजिये जिसमें सिंह का प्रभाव एक अन्य प्रकार से अंकित किया गया है। सिंह स्वाभाविक वीर रस का प्रतीक होता है। उस पर भूषण की लेखनी और वाणी से प्रसूत होकर उसकी रचना एक अनोखा रूप धारण कर लेती है। अवगाहन कीजिये—

"उत्तर पहाड़ विधनोल खँडहर झार;
खंडहू प्रचार चारु केली है विरद की।
गौर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जन्तु जंगलीन की बसति मारि रद की।
भूषण जो करत न जाने बिन घोर सोर,
भूलि गयौ आपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मद गल गजराज एक,
सरजा सौं बैर कै बड़ाई निज मद की।"

शिवराज भूषण, छन्द १५६

इस छन्द में महाकवि भूषण ने सिंह रूपी शिवा जी का चित्रण करते हुए उत्तर पहाड़ों में कुमाऊँ, मोरंग, गढ़वाल तक उसके सुन्दर यश विस्तार की चर्चा की है तथा बंगाल से गुजरात तक जो जंगली प्रान्त अपने को अत्यन्त वीर मानते थे। उनको भी लूट कर शेर रूपी शिवा ने बरबाद कर दिया था जिनमें अधिक उद्दंडता भरी हुई थी।

फिर भूषण कवि कहते हैं कि जो हाथी रूपी बादशाह अपने को अत्यन्त प्रबल समझता था और सदैव अपने महत्व का जोर-शोर से प्रचार करता रहता था। वह भी अपनी महत्ता को खो बैठा तथा अपने प्रबल मद से गलित मस्ती से आपूरित उत्कर्ष को भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार से शिवा जी रूपी शेर से सभी पद दलित होकर अपने लिये त्राण पाने को आश्रय देखते हैं। कैसी विचित्र और आकर्षक भावना इस समासोक्ति के सहारे दी गई है! इस छन्द की सारी शब्द योजना और रस व्यंजना ऐसे आकर्षक ढंग से सुनियोजित है कि इसकी महत्ता स्वयं ही हृदय को आकर्षित कर लेती है। इससे प्रस्फुटित जीवनसार हमारी धमनियों के रक्त को कितना वेगमय बना देता है। यह इस छन्द से आनन्द उठाने वाला ही समझ सकता है।

अब एक और भी उदारहण लीजिये इसमें इस महाकवि ने पहाड़ों और पहाड़ी किलों का शिवाजी से संबंध स्थापित कर एक नितान्त मौलिक, नवीन एवं महत्वपूर्ण विचार-सरणी देने का प्रयत्न किया है। इसे भी आप कवि के ही शब्दों में दृष्टिगत कीजिये—

जाहि पास जात सो तो राखि न सकत याते,
तेरे पास अचल सु प्रीति नाधियतु है।
भूषण भनत शिवराज तब कित्ति सम,
और की न कित्ति कहिबे को कांधियतु है।
इन्द्र को अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातैं,
तेरो बाहु बल लै सलाह साधियतु है।
पाँय तर आय नित निडर बसाइबे कों,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है।

शि० भू०, छन्द १०४

इस छन्द में महाकवि भूषण ने पहाड़ों का चित्रण करते हुए बतलाया है कि 'पहाड़' अपनी रक्षा तेरी शरण में आने पर प्राप्त कर सकते हैं। अतः वे आप से स्थायी प्रीति करते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि हे शिवाजी अन्यत्र हमारी रक्षा नहीं हो सकती। फिर कवि कहता है कि तेरी कीर्ति इतनी महान है कि अन्य कोई भी उसकी समता नहीं कर सकता, यों,

कहने को तो औरों की भी प्रशंसा की ही जाती है। तू (शिवाजी) इन्द्र का छोटा भाई उपेन्द्र (विष्णु), के अवतार है इसलिये तेरी भुजाओं का बल पाने के लिये ये पहाड़ आप से सलाह करते हैं। जब ये पहाड़ शरण में आ जाते हैं तो उन्हें निडर भावना देने के लिये पगड़ी रूपी किले उन पर बाँध देता है। (सम्राट अपने रक्षण वाले राजाओं को गद्दी पर बैठते समय पगड़ी बाँधते हैं) इसी प्रणाली का चित्रण भी इस छन्द मे कर दिया गया है। साथ ही इन्द्र द्वारा पहाड़ों के पंख काटने के डर से ये पहाड़ (विष्णु रूप) की शरण मे आ जाते है।

इस छन्द मे भी वीर रस पूर्ण रूप से ओत-प्रोत हैं जिसमे शिवा जी के पहाड़ी किलों का बडा ही आकर्षक तथा तथ्य पूर्ण चित्रण किया गया है। इसमें वीर रस की भावना भी पर्याप्त मात्रा मे भरी हुई है जो मानव के हृदय को उत्साह पूर्ण कर देती है।

इन छन्दों से कवि की प्रतिभा का तो अच्छा परिचय मिलता ही है साथ ही उसके कथन में वीर रस की गहराई की महानता भी लागू हो जाती है। इस विषय मे भूषण की विचारधारा अप्रतिम और असाधारण ही माननी पड़ेगी। मौलिकता का ऐसा रूप अन्य कवि मे शायद ही मिल सके। इसी प्रकार से वीर रस का परिपाक भी बहुत ही गहराई लिये हुए हुआ है। इसमें उत्साह की उत्ताल तरगे लगातार प्रवाहित होती रहती हैं। इस महाकवि की राष्ट्रीय तथा सामाजिक सफलताएँ समाज मे उत्साहपूर्ण भावनाएँ भरने मे और भी अधिक सहायक होती हैं। इस चित्रण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वीर रस के इन दोनो अंगों उत्तेजना तथा उत्साह में केवल परिमाण और हृदय पर कालगत विकास के अन्तर को छोड़ कर और कोई भेद नहीं है। दोनो मे ही वीर रस का परिपाक होता है। उत्तेजना सद्यः उत्कट उत्साह का ही दूसरा नाम है। भूषण की रचना में अधिकाश छन्द इस कोटि के मिलेगे जिनमें उत्तेजना के साथ उत्साह का स्थायी रूप भी दृष्टिगोचर होता है।

तुलनात्मक आलोचना

बीररस के विकास में बहुधा कवियों के उत्साहवर्द्धन में साम्य रूप मिलता है और भाव टकराते हुए दिखलाई देते हैं। ऐसे भाव अनायास ही एक केन्द्र पर आकर घूमते जान पड़ते हैं। इसका कारण अनुकरण के रूप में मानना ठीक न होगा। क्योंकि यह भाव-साम्य भारतीय कवियों में ही आपस में नहीं मिलता। विदेशी और भिन्न भाषी कवियों में भी इनमें कहीं न कहीं साम्यावस्था आ मिलती है। साथ ही वीरत्व प्रस्फुटन की विशेषता भी हृदयगत होने में अधिक सहायता मिलती है। यहाँ पर इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। पहले भूषण का ही एक कवित्त लीजिये—

उद्धत अपार तव दुंदुभी धुकार साथ,
लंघैं पारावार बाल बृन्द रिपुगन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के रंगे रज,
साथ ही उड़ात रज पुंज हैं परन के।
दच्छिन के नाथ सिव राज ! तेरे हाथ चढ़ें;
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
भूषण असीसें तोहि करत कसीसें पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के॥

इस छन्द में 'तुरकन' शब्द का अर्थ आत्याचारी है और औरंगजेब की सेना के लिये आया है। इसमें भूषण शिवाजी की सेना के प्रभाव का चित्रण कर औरंगजेब की सेना पर जो प्रभाव पड़ता है उसका विस्तार से चित्रण करता है। इस वर्णन से सर वाल्टर स्काट की उस ललकार से तुलना कीजिये जो कि इस कवि ने 'लेडी ऑव द लेक' में कथन किया है। स्कॉट कहता है—

Hail to the chief who in triumph advances.
Honour'd and blessed be the ever green pine.
Long may the Tree in his benner that glances.
Flourish the shetter and grace of line.
Roderigh vich Alpine dhu, ho ! Ieroe.

अब भूषण ने औरंगजेब के हाथियों के मुकाबिले में शिवाजी के सिंहों को भेज कर जो युद्ध कराया है, उसे भी अवलोकन कीजिये। यहाँ पर शिवाजी के सेनानियों को फुर्तीला, छरहरा और उग्र रूप में सिंह-सा चित्रण किया है और औरंगजेब के सरदारों को तुन्दिल, लम्बा चौड़ा कद, और शिथिल रूप में कथन किया है। इस विषय में भूषण के शब्दों का अवलोकन कीजिये—

उतैं पातसाह जू के गजन के ठट्ट छूटे,
उमड़ि घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं।
इतैं शिवराज जू के छूटे सिहराज,
जो विदारें कुंभ करिन के चिक्करत भारे हैं॥

शिवा बावनी, छन्द ५ २

अब इस की तुलना में चंदबरदाई ने पृथ्वीराज के हाथियों का जो चित्रण किया है उसका भी तुलनात्मक रूप मे विवेचन कीजिये—

गही तेग चहुआन हिन्दुआन एनं।
गजं जूथ परिकोप केहरि समानं॥
करे रुंड मुंडं करी कुम्भ फारै।
वर सूर सामंत हुकि गर्ज मारै॥

इन दोनो वर्णनों मे भूषण का चित्रण प्रत्यक्ष रूप से उत्तम और गठा हुआ है जिसमें हाथियो को काले घन के रूप मे ठहराया है जिन पर शिवा जी के शेर के समान वीर झपटकर उनके मस्तकों को फाड़ डालते हैं। चन्द का वर्णन भी उसी भाव का है। परन्तु न तो शब्द-विन्यास वैसा सुन्दर है और न शब्द-संगठन ही प्रभाव शाली है अतः निश्चित रूप से

भूषण की रचना श्रेष्ठ है। अब गंग कवि की भी इसी भाव की एक रचना लीजिये—

झुकत कृपान मय दान ज्यों उदोत भान,
एकन ते एक मानो सुषुमा गरद की।
कहै कवि 'गंग' तेरे बल की बयारि लागे,
फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरद की।

भाषा विकास की दृष्टि से यह छन्द उच्चकोटि का है परन्तु भूषण ने शिवाजी के सैनिकों को सिंह के रूप में चित्रित कर गजों के कुंभ फाड़ने का रूपक बहुत सुन्दर तथा वीर रस के अनुरूप ही अंकित किया है। सिंह वीर रस का प्रतीक माना ही जाता है। यद्यपि पवन भी वीरत्व का रूप माना जाता है। फिर भी भूषण की रचना में ओज की मात्रा अच्छी मानी जायगी।

भूषण की भावना में दुर्गा सप्तशती का भी कुछ प्रभाव जान पड़ता है। चंडी भगवती अनन्त शक्ति शालिनी तथा महिषासुर, शुंभ, निशुंभ आदि दैत्यों को संहार करने वाली है अतः भूषण की रचना में उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। भूषण के पिता रत्नाकर देवी के परम उपासक थे। भूषण ने भी शिवराज भूषण के प्रारंभ में देवी की प्रार्थना की है। उनकी रचना में कहीं-कहीं तो वाक्य अनूदित से जान पड़ते हैं। भूषण की यह अमृत ध्वनि देखिये—

क्रुद्ध द्धरि किय युद्ध द्धरि अरि अद्ध द्धरि करि।
मुंड डुरि तहँ रुंड डुकरत डुंड डुग भरि॥

शि० भू०, छन्द ३५७

इसको पढ़ कर सप्तशती के निम्न श्लोकों का स्मरण हो आता है—

छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिता पुनरुत्थिता।
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीत परमाश्रिताः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्य लयाश्रिताः।
कबन्धाश्छिन्न शिरसः शब्द शक्तष्टि पाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्ती देवी मन्ये महासुरः।

आगे फिर भूषण की रचना में देखिये—

"चंडी ह्वै घुमंडी अरि चंड मुंड चावि कर,
पीवत रुधिर कछु लावत न बार है।"

इसमें "चांमुडा पीत शोणितम्" का स्पष्ट आभास मिलता है। इसी प्रकार से—

कालिका प्रसाद के बहाने तें खवायो महि,
बाबू उमराव राव पसु के छलनि सों।

पद्यांश में "मया तवात्रौपहृतौ चण्ड मुण्ड महापशू" का भाषान्तर मात्र है।

इनके अतिरिक्त शिवराज भूषण में दुर्गा सप्तशती के कुछ अन्य वाक्यांश भी टक्कर खा जाते हैं; यथा—

(१) आदि सकति—'प्रकृति स्त्वमाद्या,'

(२) मधुकैटभ छलनि—"वञ्चिताभ्यामिति तदा।"

बिड्डाल विहंडिनि—"विडालस्यानिका यात्पातया मास वै शिरः।"

इससे स्पष्ट है कि भूषण शक्ति के उपासक और दुर्गा सप्तशती के पाठ के अभ्यासी थे।

भूषण के वर्णन में युद्ध का साक्षात् चित्र-सा अंकित हो जाता है। इस विषय में वे सर वाल्टर स्कॉट से कम सिद्धहस्त नहीं तुलना के लिये एक-एक और छन्द यहाँ दिया जाता है। यथा—

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रखत मन।
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ!
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ।
इमि ठानि घोर घमसान अति, भूषण तेज कियौ अटल।
शिवराज साह तुव खग्ग बल दलि अडोल बहलोल दल।

इसकी तुलना स्काट की 'मार्मियन' नामक पुस्तक की निम्न पंक्तियों से कीजिये—

They close in clouds of smoke and dust,
with swords sway and with lances thrust,
and such a yell was there, of sudden and potentious birth,
as if men fought upon the earth,
and finds in upper air, O life and death were in the shout,
Recoil and relly charoe and rout, and triumph and despair.*

यहाँ वर्णनात्मक शक्ति में कौन बढ़ा है, यह कहना कठिन है। भूषण की रचना विक्रमी १८ वीं शताब्दी की है और स्काट १९ वीं शताब्दी में हुए हैं। फिर भी ये दोनों रचनाएँ सद्यः जोश भरने वाली हैं और युद्ध के लिये तुरन्त फल देने वाली हैं। परन्तु भूषण में जो स्थायी भाव उत्साह के रूप में व्याप्त है वह अन्यत्र कठिनाई से मिलेगा। अतः हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि भूषण की रचना में जो उत्तेजक तथा स्थायी भाव के रूप में उत्साहवर्द्धक सामग्री मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अतः भूषण निश्चित रूप से वीररस का सर्वोत्तम कवि है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लंका के युद्ध में हनुमान, राम, लक्ष्मण के युद्धों का अच्छा चित्रण किया है। यहाँ पर कवितावली से एक छन्द उद्धृत है। देखिये—

दबकि दबोरे एक वारिध में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे एक मींजि मारे लात हैं।

*देखो, माधुरी, आश्विन १९९० वि०

तुलसी लखत राम-रावन विबुध विधि,
चक्रपानि चंडीपति चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बान इत वीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बात जात हैं।

अब भूषण का एक छन्द इसकी तुलना में अवलोकन कीजिये—

रैया राय चंपति कौ चढ़ौ छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत समसेर जोम जमकैं।
भादों की घटा सी उठीं गरदैं गगन घेरैं,
सेलैं समसेरैं फेरैं दामनी सी दमकैं।
खान उमराउन के आन राजा राउन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं।
बैहर बगारन की अरि के अगारन की,
नाँघती पगारन नगारन की धमकैं।

शि० भू०, फुटकर छत्रसाल प्रशंसा ४

गोस्वामी जी ने हनूमान द्वारा राक्षसों के वध की प्रणाली का चित्रण किया है जिसे वे बन्दर के रूप में चित्रित करते हैं। इनमें राम की ईश्वरी शक्ति का आधार देकर इन्हें महत्वपूर्ण ठहराया है। इसलिये इस उत्साह में मानवता का उत्साहवर्द्धक अनुकरण शेष नहीं रह जाता। इसी से इसमें अननुभूत शक्तियों का प्रयोग होने से हमारे काम की वस्तु नहीं रह जाती और केवल पढ़ने का आनन्द भर उठा कर चुप रह जाना पड़ता है। इसकी तुलना में भूषण की रचना छत्रसाल की प्रशंसा में बहुत ही ओजस्विनी है। उसमें कवि ने अपने नायक की तेग का ऐसा महत्त्व-पूर्ण वर्णन किया है कि तुलसी के वर्णन में वह भाव नहीं ठहर पाता। इस छन्द का शब्द-विन्यास भी वीररस के बहुत ही अनुकूल हैं तथा भावों का क्रम-विकास भी उसी भाँति बढ़ता जाता है। इससे भूषण का छन्द तुलसी से उत्तम कहने में हमें कोई संकोच नहीं है।

भूषण और मतिराम की रचना में भी कुछ साम्य मिल जाता है।

मतिराम की रचना शृंगारिक है। इस संबंध में इस कवि का यह छन्दांश अवलोकन कीजिये—

अली चलीं नवलाहि लै, पिय पै साजि सिंगार।
ज्यों मतङ्ग अड़दार कौं, लिये जात गड़दार॥

भूषण इसी भाव को वीर रस में इस प्रकार से कथन करते हैं—

"दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज' कौं।"

ऊपर के दोनों छन्दों में एक ही भाव का चित्रण है। मतिराम नवला नायिका को सखियों के साथ पति के पास भेजते हुए अड़दार हाथी को गड़दारों द्वारा ले जाने की तुलना करते हैं। महाकवि भूषण औरंगजेब के सरदारों द्वारा क्रोधित शिवाजी को उसके दरबार से ले जाने के लिये उसी उपमा का प्रयोग करते हैं। इससे हम सरलतया भूषण की व्युत्पन्न मति और सूक्ष्म विचार का अनुमान कर सकते हैं। भूषण से पहले वीररस के अनुकूल भाषा नहीं ढल पाई थी। अतः इस दृष्टि से भूषण की महत्ता स्पष्ट रूप से सबके सामने आ जाती है।

एक उदाहरण और लीजिये मतिराम अपने ललित ललाम में वीर-रस का वर्णन करते हुए चित्रण करता है—

"मूंछन सों राव मुख लाल रंग देखि मुख,
औरन कौ मूंछन बिना ही स्याम रंग भौ।"

इसी भाव का कथन भूषण के शिवराज भूषण में इस प्रकार मिलता है—

"तमक ते लाल मुख सिवा कौ निरखि भयौ,
स्याह मुख औरंग सिपाह मुख पियरे।"

मतिराम ने बूंदी के राव की प्रशंसा इसलिये की कि औरंगजेब के परिवार में किसी की मृत्यु हो जाने से अन्य राजाओं ने शोक मना कर मूछें मुड़वा ली थीं परन्तु बूंदी के राव ने मूंछे नहीं मुड़वाई थी। यह एक साधारण घटना है फिर भी अक्खड़पन प्रकट तो होता ही है।

परन्तु भूषण ने शिवाजी का चित्रण रौद्ररस में किया है जिससे औरंगजेब का मुख आतंक से काला पड़ गया तथा सिपाही भय से पीले चेहरे वाले दिखलाई देने लगे। इसमें जो ओज है वह मतिराम के छन्द में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। अन्य हिन्दी के कवि मान, सूदन, गोरेलाल आदि भी उसी कोटि में आते हैं जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है।

बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव

भूषण ने अपना ग्रंथ शिवराज भूषण सितारा में ही बैठ कर लिखा था। ग्रंथ-निर्माण में वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं से परिचित होने के लिये उन्होंने मराठा इतिहास और साहित्य का अध्ययन भी अवश्य किया होगा। इसीलिये वहाँ के साहित्य की प्रतिध्वनि भूषण की रचना में भी यत्रतत्र देख पड़ती है। इसी कारण मराठी भाषा के शब्द भी उनकी रचना में पर्याप्त मात्रा में आ गये हैं।

मराठी भाषा का जयराम कवि शिवाजी के दरबार में था। उसने "राधा माधव विलास चम्पू" नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसमें दस-बारह भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इसका एक छन्दांश यह है —

साहे सुभान कौ दान कहा विधि,
कैसे कियो निधि मोल लियो है।
कारन या कौ कह्यौ करतार ने,
सीसोदिया कुल सीस दियो है।

इसी भाव को महाकवि भूषण ने इस प्रकार से वर्णन किया है—

महावीर ता वंश में भयो एक अवनीस।
लियो विरद सीसोदिया दियौ ईस कौं सीस।

इन दोनों निरुक्तियों में भूषण का चित्रण गठा हुआ है और जयराम का वर्णन उथला-सा जान पड़ता है। फिर भी भूषण ने यह भाव जयराम से ही लिया है इसमें सन्देह नहीं। दक्षिण में शिव भारत नामक संस्कृत

का ग्रन्थ प्रसिद्ध है उसके भी कुछ भाव भूषण की रचना से टकराते-से जान पड़ते हैं। इसे भी दृष्टिगत कीजिये।

तं वीर ग्रंथ सेनान्यं संविधाय महामनाः। १७
अन्या नमूं पृचमू नाथाँ स्तत्साहाय्ये समा दिशत्। ५०
अम्बरः शम्बर समः प्रतापी याकुतो युतः।५१
तथैवांकुश खानोऽपि निरंकुश गज क्रम :। ५२

इसी भाव को भूषण ने इस प्रकार कहा है :—

साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मद्गल अफजलै पंजा-बल पटक्यौ।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सो आंकुस लै सटक्यौ।
शि० भू०, ६३

इस प्रकार से उत्तर और दक्षिण के साहित्य में भाव साम्य और आदान-प्रदान का व्यवहार राष्ट्र-निर्माण में सबसे अधिक सहायक बन सकता है साथ ही साहित्य की सम्पन्नता में भी वृद्धि करता है।

शिवराज भूषण के छन्द नं० २५९ में भूषण लिखते हैं—

"गौर गरबीले अरबीले राठौर गह्यौ,
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरपते।"

यही भाव 'शिव भारत' में इस प्रकार से वर्णित है—

सिंह लौहं महात्तं च प्रबलं च शिलोच्चयम्।
पुरन्दरम् गिरिं तद्वत् पुरीं चक्रावती मपि।

इस प्रकार से इस महाकवि ने अन्य कवियों के एकाध भाव लेकर भी उन्हें अधिक सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है जो कि उसकी प्रतिभा और शक्ति की परिचायिका है। ऐतिहासिक विवरण ही इस विषय में भूषण ने ग्रहण किये हैं जिसके बिना उक्त रचना प्रस्तुत की ही नहीं जा सकती थी।

———

भाषा पर विचार

भूषण की रचना में जहाँ भावों, संस्कृति और उदात्त विचारों का विशेष महत्व है वहाँ भाषा की दृष्टि से भी उसकी महत्ता कम नहीं है। ओजपूर्ण चित्रण के लिये भाषा का प्रस्फुटन कैसा होना चाहिए। इस पर भूषण से पहले न तो किसी कवि ने ही विचार किया था और न अन्य साहित्यिकों ने ही इसकी कुछ ऊहापोह की थी।

ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने इस कार्य के लिये काफी भ्रमण भी किया, क्योंकि बहुत से शब्द जो सौरसेन प्रान्त भदावर में ब्रजभाषा के रूप में प्रचलित हैं जिनका प्रयोग किसी कवि ने कभी नहीं किया था। उन शब्दों का प्रयोग भूषण की रचना में स्वतन्त्रता से मिलता है। जैसे ओत (शान्ति), ठइ (निश्चय) कट्ठ (कठा) घरकी बाहरी सीमा, रठ (ढेर) और छिया (तुच्छ)। भद्द (अपमान), रद्द (बरबाद), डुंड (धड़) इत्यादि। इन शब्दों का प्रयोग किसी कवि ने नहीं किया था और केवल बटेश्वर के आस पास ही बोले जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि भूषण ने वहाँ भ्रमण अवश्य किया था तभी उन्हें उपयुक्त मान कर प्रयोग के लिये चुना था। और भी बहुत से शब्द हैं जो भूषण ने नवीन रूप में ही प्रयुक्त किये हैं।

यहाँ पर हम ब्रजभाषा विषयक एक प्रचलित भ्रान्ति की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। आजकल मथुरा-बृन्दावन के समीप प्रचलित बोली ही ब्रजभाषा समझी जाती है। परन्तु साहित्य में जो भाषा इस नाम से प्रचलित है वह ब्रज की प्रचलित बोली से मेल नहीं खाती। वहाँ पर कर्म के रूप में मोकूँ, तोकूँ, जाकूँ, वाकूँ तथा करण एवं अपादान कारकों में वासूं, तासूं, मोसूं, लाठी सूं, आदि प्रयोग चलते हैं। इसी प्रकार से वहाँ पर क्रियाओं तथा सर्वनामों में भी ऐसा ही विधान प्रचलित है। साहित्य में इन शब्दों के स्थान पर मोकौं, तोकौं, जाकौं, वाकौं,

जासौं, वासौं, मोसौं, लाठी सौं आदि प्रयोग प्रचलित हैं अतः मथुरा जिले की स्थानिक बोली साहित्यिक ब्रजभाषा नहीं है यह निर्विवाद बात है। मथुरा वृन्दावन में ब्रजभाषा साहित्य का भी खूब प्रचार है क्योंकि कृष्णोपासना में इसी का आश्रय लिया गया है। अतः शिक्षित समाज में इन दोनों रूपों का प्रयोग होता है। परन्तु वहाँ के गाँवों में केवल प्रथम रूप के ही दर्शन होते हैं।

इस अन्तर का मुख्य कारण यह है कि साहित्यिक भाषा सौरसेनी से निकली है जो अपभ्रंश के क्रम-विकास द्वारा वर्तमान रूप में स्थित हुई है। अब से २२०० वर्ष पूर्व सौरसेनपुर (वर्तमान बटेश्वर) सौरसेनी का भाषा का प्रधान केन्द्र था। इसका उल्लेख मेगास्थनीज़ ने अपने एरियन नामक ग्रन्थ में विस्तार से किया है और इस नगर की गणना भारत के छः प्रसिद्ध नगरों में की है। यह नगर श्रीकृष्ण के पितामह सूरसेन की राजधानी था जो कि सूरसेन के नाम पर ही बसाया गया था। आज भी वहाँ अनिरुद्ध खेड़ा और प्रद्युम्न पुरा नामक मोहल्ले, खँड-हरों के रूप में, श्रीकृष्ण के वंशजों की स्मृति में विद्यमान हैं। जिसका उल्लेख आर्कियालॉजीकल सर्वे की रिपोर्टों में भी मिलता है।* यही भूमि ब्रजभाषा का असली क्रीड़ा क्षेत्र है जहाँ की प्रचलित बोली पूरे भदावर प्रान्त में बोली जाती है। यही कारण है कि साहित्यिक विद्वान् गण भी ब्रजभाषा के मुख्य केन्द्र के समझने में किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं।

उक्त भ्रम में पड़ कर बहुत से विद्वानों ने भूषण की शुद्ध ब्रजभाषा को अशुद्ध और मनमानी तोड़-मरोड़ के नाम से अभिहित किया है। यथार्थ रूप में देखा जाय तो भूषण की भाषा अत्यन्त परिष्कृत, वीररस के अनु-कूल, प्रभावशालिनी, ओजस्विनी तथा मुहावरेदार शुद्ध ब्रजभाषा है।

---

*देखिये—आर्कियालॉजीकल सर्वे रिपोर्टस सन् १८७१—२ जिल्द ४ पृ० १२८ तथा सरस्वती पत्रिका भाग २७ संख्या ४ पृष्ठ ४६३।

ब्रजभाषा के असली रूप से अनभिज्ञ सज्जनों ने ही छिद्रान्वेषी बन कर उसमें व्यर्थ के दोष दिखलाने का प्रयत्न किया है।

इस विषय में एक बात और भी विचारणीय है कि भूषण से पहले वीररस का कोई काव्य ब्रजभाषा में न था। केशवदास ने रतनबावनी तथा वीरसिंह देव चरित्र की रचना ब्रजभाषा में अवश्य की थी परन्तु इनमें बुन्देलखण्डीपन अधिक आ गया है। अतः शुद्ध ब्रजभाषा नहीं रह सकी है। फिर इनके प्रयोग भी वीररस के अनुरूप नहीं ठहर सके हैं क्योंकि इन्होंने तत्कालीन प्रचलित भाषा का ही स्वरूप ले लिया है जो वीररस के अनुकूल न होकर शृङ्गार रस के लिये ही प्रयुक्त होता चला आया था। इससे इन रचनाओं में न तो ओज की वह मात्रा दिखलाई देती है जो भूषण में है और न उसका परिष्कार ही जान पड़ता है।

यह सत्य है कि भूषण ने अपने राष्ट्रीय संगठन के लिये सारे भारत वर्ष में चक्कर लगाया था अतः उनकी भाषा में सभी प्रान्तों के शब्दों का प्रयोग हुआ है। परन्तु भूषण ने इन्हें ऐसा अपना लिया है कि वे पराये नहीं जान पड़ते।

भूषण ने महाराष्ट्र प्रान्त का काफी भ्रमण किया था और वहाँ रहे भी बहुत दिनों तक थे अतः इनकी रचना में बहुत-से मराठी शब्द अनायास आये हैं। यथा—

याची, चिंजी, चिंजाउर, भटी, हुब्बै, वरगी, मल्लारि धम्मिल आदि शब्द मराठी भाषा से ही भूषण ने लिये हैं। शिवराज भूषण की रचना उन्होंने सितारा में ही बैठ कर की थी। अतः उनकी अन्य रचनाओं की अपेक्षा शिवराज भूषण में मराठी शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसीलिये एदिल, खुमान, और सरजा शब्दों तक का प्रयोग मराठी रूप में किया है। इनके अतिरिक्त अकर, ठइ, लिय, भुवाल, अरि, और बारगीर इत्यादि शब्दों के प्रयोग भिन्न प्रान्तों से लिये गये हैं।

भूषण की भाषा में फ़ारसी, अरबी तथा तुरकी भाषा के भी बहुत-से शब्दों का प्रयोग हुआ है। मुख्यतया जहाँ मुसलमानों के सम्बन्ध की

बातचीत आई है वहाँ तो उन शब्दों का बाहुल्य पाया जाता है। इसे भूषण के ही शब्दों में अवलोकन कीजिये—

"जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो जोऽव,"

शि० भू०, १६८

"छूट्यौ है हुलास आम खास एक संग छूट्यौं,
हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही।"

शि० भू०, १५०

तथा—

"कीरति कों ताजो करी, बाजी चढ़ि लूटि कीन्ही,
भई सब सेन बिनु बाजी बिजैपुर की।"

शि० भू०, १५५

इसी प्रकार से जहान, दरगाह, बखत बुलन्द, पेस कसैं, मुलक, बलंद, जोरावर, उजीर, दिल, अदली, दरकी, गरीब नेवाज, बालम, गरबीले, बिलायति, रसाल, गुसुलखाने, हिम्मत, इलाज, खजाने, मिजाज, दौलत, उमराव, नाहक, जरवाफ, हमाल, ख्याल, और दिवाल आदि सैकड़ों फ़ारसी, अरबी और तुर्की शब्दों का प्रयोग भूषण की रचना में मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी इन शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु भूषण की रचना में ऐसे शब्दों की अधिक मात्रा पाई जाती है। सामयिक परिस्थिति और मुसलमानों के संसर्ग से ऐसे प्रयोगों का होना स्वाभाविक है।

इन शब्दों के प्रयोगों में भूषण की यह विशेषता है कि इन्हें तद्भव रूप में ही भूषण ने ग्रहण किया है जैसे कि सर्वसाधारण में प्रचलित हो गये थे, तथा ढल कर भाषा में ऐसे घुल-मिल गये थे कि पढ़ते समय वे जरा भी नहीं खटकते। अतः ये शब्द भाषा की समृद्धि बढ़ाने में भी सहायक हैं। इन शब्दों ने भाषा के विकास में अच्छी सहायता की है तथा शब्दों का अभाव भी दूर हो जाता है।

भूषण ने कहीं-कहीं पर अपनी रचना में पृथ्वीराज रासौ की डिंगल-

प्रणाली का भी प्रयोग किया है अतः वहाँ पर इस महाकवि ने शब्दों को वैसा ही रूप दे दिया है। जैसे—

किन्निय, पब्बय, नैर, पुहुमि, कित्ति, ठिल्लिय, मुद्ध, अद्ध, भ्रम्मि इत्यादि। ऐसे शब्दों के प्रयोग भूषण के समय में साधारण बोलचाल में प्रचलित न थे, परन्तु प्राचीन पद्धति का नमूना दिखाने के विचार से तथा भाषा में ओज लाने की दृष्टि से ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया हैं। परंतु ये नमूने अत्यल्प मात्रा में भी मिलते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूषण को अपनी रचना में अनुकूल भाषा का संगठन करने का भी प्रयास करना पड़ा था। फिर भी उनकी भाषा में न तो कृत्रिमता दिखलाई देती है और न अस्वाभाविकता ही कहीं आने पाई है वरन् इस संगठन से एक मँजी-मँजाई भाषा का रूप हमारे सामने आ जाता है जो कि वीररस के उत्कर्षपूर्ण भावों का भार वहन करने में सर्वथा एवं पूर्णतया समर्थ है। अतः भाषा की दृष्टि से भी भूषण का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाता है जो कि आगे के कवियों के लिये पथ प्रशस्त कर देता है।

भूषण ने अपनी रचना में ब्रजभाषा का ही रूप रखा है और सर्वत्र उसी का प्रयोग किया है। परन्तु नमूने के रूप में जहाँ कुछ डिंगल का स्वरूप दिया है उसी प्रकार से खड़ी बोली का भी प्रयोग उनकी रचना में दिखलाई देता है। इसके भी कुछ उदाहरण आप के समक्ष उपस्थित हैं—

(१) "अफजल खाँ को गहिं जाने मयदान मारा,
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है।"

(२) "बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।"

(३) "झुक्के निसान सक्के समर मक्के तक्क तुरुक्क भजि।"

(४) "औरङ्ग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जराना भयो जालिम जमाना को।"

(५) "शिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों,
कहत बार बार कहि पातसाह गरजा।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण सब प्रकार की रचना करने में समर्थ थे और इसी से उनकी कविता में हम अनेक प्रकार के नमूने पाते हैं। अतः उनका शब्द-भांडार अक्षय था उसी प्रकार से भाषा पर भी उनका प्रभुत्व गहराई लिये हुए था जिसको वीररस के अनुकूल ढालने में भूषण की शक्ति अभूत पूर्व थी।

भूषण ने ब्रजभाषा की उकारान्त शब्द योजना को पसन्द किया था तथा भाषा में मनोहरता और माधुर्य लाने के लिये इसका अधिकता से प्रयोग किया है। ऐसे शब्दों की संख्या भी पर्याप्त है यथा—

गोतु, उदोतु, सोतु, होतु, बांधियतु, कांधियतु, नाधियतु, काटियतु, वाहियतु इत्यादि-इत्यादि। इन शब्दों के प्रयोग में ब्रजभाषा का स्वरूप और भी आकर्षक एवं मनोहर बन जाता है। कुछ साहित्यिकों ने इस 'उकारान्त' प्रणाली को अवधी का रूप माना है जो कि अशुद्ध है। यह ब्रजभाषा की मानी हुई प्राचीन प्रणाली है जिसका सभी कवियों ने प्रयोग किया है।

इन उदाहरणों से हम भूषण के भाषा पर अधिकार का सरलतया अनुमान कर सकते हैं और कह सकते हैं कि वीररस के अनुकूल भाषा के संचयन में इस महाकवि को बहुत ही अच्छी सफलता मिली थी। इससे पूर्व ब्रजभाषा में शृङ्गारिकता की ही प्रधानता थी। इसलिये शब्द संगठन का स्वरूप भी वैसा ही बन गया था, परन्तु भूषण की राष्ट्रीय भावना ने इस शब्द-विन्यास में गहरा परिवर्तन कर दिया जिसके प्रभाव से भाषा में सजीवता और उत्कृष्टता दोनों का ही अच्छा प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

कहावतों और मुहावरों का प्रयोग

महाकवि भूषण ने अपनी रचना में कहावतों और मुहावरों का स्वतंत्रता पूर्वक खूब प्रयोग किया है। उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

(१) गई कटि नाक सिगरेई दिल्ली दल की।
(२) स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी।
(३) ग्रीवा नै जात। (४) छाती दरकति है।
(५) पुहुमी के पुर हूत। (६) भान्यौ साहि कौ इलाम।
(७) दंत तोरि तखत तरे ते आयो सरजा।
(८) नाह दिवाल की राह न धाओ।
(९) कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं।
(१०) तृन ओठ गहे अरि जात न जारे।
(११) कुल चन्द कहावै।

इन मुहावरों का भूषण ने सफलता पूर्वक प्रयोग किया है तथा उन्हें वीररस के साँचे में ढाल कर व्यक्त किया है। मुहावरों की भाँति कवि ने लोकोक्तियाँ भी अपनी रचना में ठीक-ठीक बैठा दी हैं। इनके भी कुछ नमूने यहाँ उपस्थित हैं —

(१) सौ सौ चूहे खाय कै बिलारी बैठी तप कौं।
(२) काल्हि के जोगी कलींदे के खप्पर।
(३) अजौं रवि मंडल रुहेलन की राह है।
(४) छागौ सहै क्यों गयन्द कौ झप्पर।
(५) जे परमेश्वर पर चढ़ैं तेही सांचे फूल।
(६) सूबा ह्वै दच्छिन चले धरे जात कित जीव।

गोस्वामी तुलसीदास की चौपाइयों की भाँति भूषण के अनेक छन्दांश लोकोक्तियाँ बन गई हैं। यथा—

(१) तीन बेर खातीं ते वे तीन बेर खाती हैं।

(२) बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।

(३) नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं।

(४) थारा पर पारा पारावार यों हलत है। इत्यादि

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण ने अपनी रचना में कहावतों तथा मुहावरों का पूर्ण सफलता के साथ प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से भाषा का स्वरूप और भी निखर आया है।

शैली

महाकवि भूषण ने जहाँ भाषा के विकास में मौलिक सफलता प्राप्त कर ली थी वहाँ अपनी शैली में भी एक नया मोड़ देने का प्रयत्न किया है। भूषण ने अधिकांश में विवेचनात्मक प्रणाली का अनुगमन किया है तथा संश्लिष्ट शैली भी उनकी रचना में कम नहीं है जिसका मुख्य कारण यह है कि इस महाकवि ने महाकाव्य रचने का प्रयास नहीं किया। इस कार्य के लिये न तो उनके पास अवकाश था और न ऐसी परिस्थिति ही थी कि सूर तुलसी जैसी रचनाएं निर्मित हो सकतीं। उस समय देश में औरंगजेबी शासन प्रचलित था जिसके प्रभाव से सारा देश संघर्षमय बन गया था। भूषण भी इस जीवन से अलग नहीं रह सकते थे अतः उसकी प्रतिक्रिया रूप में इन्होंने खुल कर भाग लिया था और उसका नेतृत्व स्वयं ग्रहण कर उसकी साम्प्रदायिकता के विरुद्ध कड़ा मोरचा लिया था। इसीलिये भूषण की शैली में उक्त दोनों रूपों का ही समावेश होना अनिवार्य था तथा विवरणात्मक शैली का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। फिर भी रायगढ़ वर्णन में हमें इसका नमूना मिल जाता है।

विवरणात्मक शैली

जिस चित्रण में यथातथ्य कथन इतिवृत्तात्मक होता है उसे ही विवरणात्मक शैली कहते हैं। महाकाव्यों में इस शैली का बहुधा अनुगमन किया जाता है। क्योंकि उसमें आदि से अन्त तक विवेचनात्मक प्रणाली का निर्वाह करना कठिन ही होता है अतः कड़ियों का सम्बंध-विच्छेद न होने पावे इसीलिये बीच-बीच में इस शैली द्वारा समन्वय कर दिया जाता है।

यदि पूरा वाक्य विवरणात्मक शैली में अंकित हो तो काव्य में फीका-

पन आ जाता है और पढ़ने में ऊब बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये गोरेलाल का छत्रप्रकाश दोहा और चौपाइयों में कहा गया है। अतः वीर-रस के अनुकूल ये छन्द ही नहीं हैं फिर आदि से अन्त तक विवरणात्मक शैली का अनुगमन होने से न तो वैसी सजीवता और उत्साह का प्रस्फुटन ही हुआ है जैसा भूषण और मान की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है और न उसमें साहित्यिकता के दर्शन ही होते हैं। अतः इस काव्य में केवल नीरसता ही पल्ले पड़ती है। इसलिये उच्च कोटि के कवि इस शैली का प्रयोग कम मात्रा में ही करते हैं और वह भी भावों की कड़ी जोड़ने के विचार से ही।

महाकवि भूषण ने केवल नमूना दिखाने के लिये ही शिवराज भूषण में इस शैली का प्रयोग किया है। उसका कुछ नमूना यहाँ दिया जाता है जिससे पाठक समझ सकते हैं कि वे इस शैली को रचना में भी पूर्ण दक्ष थे। देखिये—

कहुँ बावरी सर कूप राजत, बद्ध मनि सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चक्र वाक विहार करत सनान हैं।
कितहूँ विसाल प्रबाल जालन, जटित अंगन भूमि है।

... ...

"लवली लवंग यलानि केरे, लाख हों लगि लेखिये।
कहुँ केतकी कदली करौंदा, कुंद अरु करवीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेव कटहल तूत अरु जम्मीर हैं।"

... ...

पुन्नाग कहुँ कहुँ नाग केसरि, कतहुँ बकुल असोक हैं।
कहुँ ललित अगर गुलाब पाटल पटल बेला थोक हैं॥

शि० भू०, १९-२१

फुटकर छन्दों में तो इस शैली का प्रयोग अच्छा माना ही नहीं जाता। इसलिये शिवराज भूषण में इस प्रणाली का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल

नमूने के रूप में उक्त कथन कर दिया गया है। आलंकारिक ग्रंथ में तो इस शैली का प्रयोग संभव ही नहीं होता।

इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि भूषण को राज-दरबारों का संगठन करके उनसे काम लेना था। दरबारों में काव्य-ग्रन्थों के सुनाने के लिये न तो अवसर ही होता है और न अवकाश ही। वहाँ तो कवित्त, सवैया, छप्पय, अमृत ध्वनि जैसे बड़े छन्दों द्वारा ही प्रभाव डाला जा सकता है जिसमें चमत्कारपूर्ण रचना उत्कृष्ट रस से ओत प्रोत कर दी गई हो। इसके लिये दरबारी कान पहिले से ही अभ्यस्त हो रहे थे। महाकवि भूषण ने इसी प्रणाली का अनुगमन करके बड़े बड़े राज दरबारों तक में अपना पूरा सिक्का जमा रक्खा था। फिर भी विवरणात्मक शैली में उनकी रचना का अभाव नहीं है उसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हू की ओट में।
ताही समै सिवराज हांकि मारि हल्ला कियो,
दावा बांधि परा हल्ला वीर वर जोट में।
भूषन भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहौं,
किम्मत यहां लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परै कोट में।

शिवाबावनी, ३१

इस छन्द में भूषण ने शिवाजी के युद्ध-कौशल और किला सर करने के ढंग का बड़ा ही विशद् तथा ओजपूर्ण वर्णन किया है। ऐसे ही कुछ और भी विवरणात्मक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें वीररस का बहुत आकर्षक प्रस्फुरण हुआ है। परन्तु भूषण की महत्ता वास्तव में विवेचनात्मक तथा संश्लिष्ट शैली में ही समझनी चाहिए।

विवेचनात्मक शैली

भूषण की सबसे अधिक प्रसिद्ध और मँजी हुई शैली विवेचनात्मक ही है। इस शैली के प्रभाव से भूषण को वास्तव में महाकवि भूषण की उपाधि से विभूषित किया गया था। इसके भी कुछ उदाहरण यहाँ उपस्थित हैं—

कवि कहैं करन करन जीत कमनैत,
अरिन के उर माँहि कीन्हौं इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धराधरनि को मेटौ अहमेव है।
'भूषन' भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज काज देखि कोऊ पावत न भेव है।
कहरी यदिल मौज लहरी कुतुब कहैं,
बहरी निजाम के जितैया कहैं देव है।

शि० भू०, छं० ७२

इस छन्द में महाकवि भूषण ने शिवाजी के प्रभाव का अत्यन्त आकर्षक, ओजपूर्ण तथा मनोरंजक ढंग से विश्लेषण किया है। उन्होंने आदिलशाह, कुतुबशाह तथा निजामशाह द्वारा शिवाजी को क्रमशः 'कहरी' 'मौज लहरी' तथा 'जितैयादेव' कहला कर उसके प्रति तीनों राज्यों की वास्तविक भावना और व्यवहार का बड़े ही कलापूर्ण ढंग से प्रदर्शन किया है। इसमें कवि की तीव्र बुद्धि और विलक्षण प्रतिभा का बहुत ही सुन्दर परिचय मिल जाता है। निजाम की 'बहरी' उपाधि कौतूहल से रिक्त नहीं है।

नीचे के उदाहरणों में कवि शिवाजी के आतंक का औरंगजेब पर क्या प्रभाव पड़ा था उसका चित्रण इस प्रकार से करता है—

दौलति दिली की पाय कहाये आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के विरद विसारे तैं।

भूषन भनत लरि लरि सरजा सों जंग,
निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तैं।
सुधर्‌यौ न एकौ साज, भेजि भेजि वे ही काज,
बड़े बड़े बेइलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहै मेरु करु सिवाजी सों वैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।
शि० भू०, २८१

इस छन्द में भूषण ने अकबर और बाबर के व्यवहार की प्रशंसा करते हुए उसी का अनुकरण करने को औरंगजेब से कहा है। साथ ही शिवाजी से लड़ने से उन हानियों का भी दिग्दर्शन करा दिया है जो कि उसे भुगतनी पड़ी हैं अर्थात् किले हाथ से निकल गये सरदार मारे गये और नगरों की बरबादी हुई। अतः हे औरङ्गजेब ! शिवाजी से मेल कर ले। कैसा विश्लेषणात्मक वर्णन है। एक उदाहरण और लीजिये—

सिंह थरि जाने बिनु जावली जंगल हठी,
भटी गज एदिल पठाय करि भटक्यौ।
भूषन भनत देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मत हिये में धारि काहु वै न हटक्यौ।
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पञ्जा बल पटक्यौ।
ताविगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सु आंकुस लै सटक्यौ।
शि० भू०, ६३

इस छन्द में कवि ने शिवाजी द्वारा अफ़जल ख़ाँ के बध का बड़ा ही सांगोपांग कथन किया है। जावली जङ्गल को सिंह की थली के रूप में अफजल ख़ाँ को हाथी के रूप में तथा शिवाजी को सिंह के रूप में चित्रित कर एक बहुत ही समन्वयात्मक रूपक देने का प्रयत्न किया है। फिर बघनखा से उसे मार गिराने के कारण इसका विवेचन और भी महत्वपूर्ण

हुआ है जिसमें याकूत खां रूपी महावत अंकुश खां को साथ लेकर वहाँ से बीजापुर को सटक जाता है। इस छन्द में अंकुश के प्रयोग से और भी सजीवता आ गई है। छन्द का एक एक शब्द विश्लेषण के स्वरूप को बहुत ही मार्मिक रूप में अंकित करता है अतः छन्द की वह शैली अत्यन्त ही आकर्षित एवं हृदयग्राही है। ऐसे पचासों छंद भूषण की रचना से दिये जा सकते हैं जिनमें इस विवेचनात्मक शैली का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है।

संश्लिष्ट शैली

जिस रचना में विवरणात्मक तथा विवेचनात्मक दोनों शैलियों का मिश्रण होकर नवीन रूप में रचना प्रत्यक्ष होती है उसे ही संश्लिष्ट शैली कहते हैं। भूषण की यह शैली भी बहुत सफल हुई है। इसके भी कुछ नमूने यहाँ उपस्थित हैं—

दानव आयो दगा करि जावली,
दीह भयारो महा मद भार्यौ।
भूपन बाहुबली सरजा तेहि,
भेंटवे कौं निरसंक पधार्यौ।
बीछू के घाय गिरै अफजल्लहि,
ऊपर ही सिवराज निहार्यौ।
दाबि यों बैठो नरिंद अरिंदहि,
मानो मयंद गयन्द पछार्यौ।

शि० भू०, ९९

इस छंद में भूषण ने शिवाजी द्वारा अफजल खाँ के वध का वर्णन विवेचनात्मक रूप में न देकर संश्लिष्ट शैली में दिया है। इसमें कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार का सहारा लेकर घटना का स्वरूप बहुत ही आकर्षक बना दिया है। भूषण की यह शैली भी बहुत ही मँजी हुई प्रतीत होती है और कवि रचना में इसकी भी प्रधानता दिखलाई देती है। एक उदहारण और प्रस्तुत है—

आये दरबार बिललाने छड़ीदार देखि,
जापता करन हारे नेकहू न मन के।
भूषण भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भये उमराव तुजुक करन के।
साहि रह्यौ जकि सिव साहि रह्यौ तकि,
और चाहि रह्यौ चकि बने ब्योंत अनबन के।
ग्रीपम के भानु सो खुमान कौ प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूंदि तुरकन के।
शि० भू०, ३८

इस कवित्त में भी इस महाकवि ने एक उपमा का सहारा लेकर औरंग-शिवाजी भेंट का बहुत ही आतंकपूर्ण चित्रण किया है जिसमें कवि ने संश्लिष्ट शैली का एक भव्य रूप देने का प्रयत्न किया है। अलंकारों के कथन में बहुधा कवि ने इसी शैली का अनुसरण किया है जो कि इसकी रचना में अनायास ही आकर प्रविष्ट हो गये हैं। इनके कारण कवि की रचना में कोई व्यवधान नहीं दिखलाई देता वरन् अर्थ के स्पष्टीकरण और भावों के विश्लेषण में ये अधिक सहायक होते हैं और प्रवाह की सरसता यथावत् कायम रहती है।

शैली की विशेषताएं

भूषण की शैली की अनेक विशेषताएं हैं वे युद्ध के बाहरी साधनों का ही वर्णन कर संतोष नहीं कर लेते वरन् मानव हृदय उमङ्ग भरने वाली भावनाओं के विश्लेषण की ओर ही उनका सदैव लक्ष्य रहता है। उनका शब्द विन्यास जहाँ वीररस के अनुकूल रहता है वहाँ उनका भाव-चित्रण भी उत्साहवर्द्धक और स्फूर्तिदायक तथा उत्तेजक है। इस प्रकार से शब्दों और भावों का सामञ्जस्य भूषण की रचना की सबसे बड़ी विशेषता है। यथा—

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।

तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर शेर शिवराज है।
शि० भू०, ५६

... ...

चमकती चपला न फेरत फिरंगे भट,
इन्द्र को न चाप रूप बैरख समाज को।
शि० भू०, ८१

... ...

दल के दरारे हूते कमठ करारे फूटे,
केरा कैसे पात बिहराने फनसेस के।
शि० बा०, ८

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण की रचना में जैसा उत्कृष्ट एवं परिष्कृत वीररस का परिपाक हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं दिखलाई देता।

भूषण के बहुत से छन्द इस प्रकार से वर्णित हैं मानो वे किसी के सामने पहुँचकर धमकाते से जान पड़ते हैं। देखिये—

बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझ से सवाई तेरा भाई सलहेरिपास,
कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा।
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हें गढ़,
जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिल्ली दल का दलन—
अफजल का मलन सिवराज आया सरजा।
शि० भू०, १६१

तथा

बूड़ति है दिल्ली सो सँभारे क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लागौ सिवराज महा काल को।
शि० बा०, ३६

और भी—

भूषन सुकवि कहैं सुनौ नवरंगजेब,
ऐते काम कीन्हें तब पातसाही पाई है।

शि० बा०, ४५

इससे स्पष्ट है कि भूषण ने अपनी शैली में इस प्रकार की नवीनता लाने का प्रयत्न किया था।

सूबेदार बहादुरखाँ को भी संबोधन कर वे कहते हैं:—

या पूना में मत टिकौ खान बहादुर आय।
ह्याँई साइत खान को दीन्हीं सिवा सजाय॥

शि० भू०, ३४०

इसी प्रकार से भूषण ने शिवा जी के सम्मुख मान कर भी बहुत-से छन्द कहे हैं जिनमें ईश्वर रूप की सर्व व्यापकता भी व्यक्त होती है। सम्मुख की स्थिति में जो ओज और तेजस्विता व्यक्त होती है परोक्षा में वैसा रूप नहीं आ सकता। अतः भूषण ने इस प्रणाली का भी अनुगमन किया है। यथा—

आजु शिवराज महाराज एक तुही,
सरनागत जनन कौं दिवैया अभय दान कौ।

....

दिल दरियाव क्यों न कहै कविराय तोहि,
तो में ठहरात आनि पानिप जहान कौ।

शि० भू०, ३४८

अतः स्पष्ट है कि भूषण को यह एक कथन-प्रणाली थी। वास्तव में उनके सामने जाकर ये छन्द नहीं सुनाये गये थे।

भूषण ने प्रश्नोत्तर प्रणाली का भी अनुगमन किया था। उसके भी कुछ उदाहरण लीजिये—

को दाता को रन चढ्यौ को जग पालन हार।
कवि भूषन उत्तर दियौ सिव नृप हरि अवतार।

शि० भू०, ३१४

सुनि सु उजीरन यों कह्यो सरजा सिव महाराज।
भूषन कहि चकता सकुचि नहिं सिकार मृगराज॥

शि० भू०, ६४

ऐसे प्रश्नोत्तर भी सजीवता लाने में अच्छी सहायता करते हैं साथ ही आकर्षक भी होते हैं। इस विषय के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

भूषण की शैली की एक विशेषता यह भी थी कि किसी बात को समझाने के लिये वे इतने अधिक उदाहरण दे डालते हैं कि विषय के समझने में कोई कठिनाई शेष नहीं रह जाती। इसके भी कुछ उदाहरण ये हैं—

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सु अम्भ पर,
....
त्यों मलेच्छ वंश पर शेर शिवराज हैं।

शि० बा०, १

तथा—

शक्र जिमि शैल पर अर्क तम फैल पर,
....
मलेच्छ चतुरंग पर चिन्ता मणि पेखिये।

फुटकर छन्द

इस विषय के भी उदाहरणों की भूषण की रचना में कमी नहीं है। ऐसी रचनाओं में भी ओज का प्रस्फुटन और उत्साहवर्द्धन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। महाकवि भूषण जिस समय अपनी रचना गम्भीर स्वर से दरबार में सुनाते होंगे उस समय सारा दरबार स्तंम्भित हो जाता होगा। और उसका एक-एक शब्द श्रोताओं के मस्तिष्क में देर तक घुमड़ता रहता होगा। सिर-चालन तो मस्ती की प्रथम भूमिका मात्र है। इससे हम भूषण की रचना की शैलियों का सरलतया अनुमान कर सकते हैं जिसमें विभिन्नता के प्रभाव से भी नीरसता नहीं आने पाती।

रसों का निरूपण

भूषण की रचना में वीररस का इतना सुन्दर परिपाक हुआ है कि उससे जीवन शून्य व्यक्ति भी नवीन स्फूर्ति और उत्साह से आपूरित हो जाता है। इस महाकवि ने वीररस को मथ कर और उसके प्रत्येक अंगों पर दृष्टि डाल कर अपनी कविता में प्रतिभा के सहारे ऐसी उत्कृष्ट भावना भर दी है कि उत्साह साक्षात् स्वरूप धारण कर प्रत्यक्ष हो जाता है। इस महाकवि ने दान वीर, दया वीर, धर्म वीर, कर्म वीर, ज्ञान वीर और युद्ध वीर के रूप में वीर रस के अनेक भेदों का चित्रण किया है जिनसे अंशतः रस उत्पादन तो होता ही है परन्तु यथार्थ में उत्साह की पूर्ण रूप से सृष्टि करने वाला युद्ध वीर ही होता है और वही वीररस का प्रतीक माना जा सकता है। भूषण ने भी अपनी रचना में इसी का विशेष वर्णन किया है। दान वीर का एक उदाहरण अवलोकन कीजिये—

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पव्वय से पील देत नहिं अकुलात है।
भूषन भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेर सो सुमेर सों लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई कौ बखान करि जात है।
जाको जस टंक सातों दीप नव खंड महि,
मंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है।

शि० भू०, छन्द २२७

इस छन्द में कवि ने शिवा जी के गज दान और स्वर्ण देने की उदा-

रता का बड़ा ही प्रभावशाली कथन किया है। अब दया वीर का भी एक नमूना लीजिये—

दिल्ली कौ हरौल भारी सुभट अडोल गोल,
चालिस हजार लै पठान धायौ तुरकी।
भूषन भनत जाको दौर ही कौ सोर मच्यौ,
एदिल की सीमा पर फौज आनि ढुरकी।
भयो है उचाट करनाट नर नाहन कौं,
डोलि उठी छाती गोलकुंडा ही के धुरकी।
साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब,
बाहुबल राखी पातसाही बीजापुर की।

शि० भू०, फुट० २४

इस छन्द में भूषण ने दया वीर के रूप में शिवा जी द्वारा औरंगजेब के आक्रमण से बीजापुर राज्य की रक्षा करने की चर्चा की है जिसे दया के रूप में मानना युक्ति-युक्ति है। अब धर्म वीर का भी एक उदाहरण लीजिये—

राखी हिन्दुआनी हिन्दुआन को तिलक राख्यौ,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यौ राख्यौ गुन गुनी में।
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि कैं दिवाल राखी दुनी मैं।

इस कवित्त में भूषण ने अत्याचारी औरंगजेब की धर्म विरोधी भावना को रोककर शिवा जी द्वारा धर्म की रक्षा करने का उल्लेख किया है। इसमें धर्म वीर का चित्रण बड़ी सुन्दरता से किया गया है और अत्याचार का निराकरण भी कर दिया गया है। इस प्रकार से कवि की विचारधारा

का एक आकर्षक स्वरूप सामने आ जाता है जिसमें साम्प्रदायिकता न रह कर धर्म की रक्षा सामने आती है।

हमारे चरितनायक की रचना में कर्म वीरता की भावना आदि से अन्त तक ओत-प्रोत है। शिवा जी के कार्यों का इतने विस्तार से वर्णन किया गया है कि कहीं भी पृष्ठ खोलने से हमें उसके दर्शन हो सकते हैं। देखिये —

साहि तनै सरजा खुमान सल हेरि पास,
कीन्हों कुरुखेत खीझि मीर अचलन सों।
भूषन भनत बलि करी है अरीन धरि,
धरनी पै डारि नभ प्रान दै बलन सों॥
अमर के नाम के बहाने गो अमर पुर,
चंदावत लरि सिवराज के दलन सों।
कालिका प्रसाद के बहाने ते खबायो महि,
बाबू उमराव राव पसु के छलन सों॥

शि० भू० ६७

इस छन्द में भूषण ने शिवा जी के वीरतामय कार्यों का कथन सल्हेर युद्ध के आधार पर किया है जिसमें अमर सिंह चंदावत आदि अनेक बड़े-बड़े सरदार औरंगजेबी सेना के मारे गये थे तथा २२ बड़े उमराव कैद कर लिये गये थे। इसे कवि कालिका देवी के लिये बलिदान के रूप में अंकित करता है। इससे शिवाजी की महत्ता और उत्साहपूर्ण कर्म वीरता का अच्छा दिग्दर्शन होता है।

अब भूषण के ज्ञान वीर का भी एक नमूना लीजिये; यथा—

चाहत निर्गुण सगुण कौं ज्ञानवन्त की बान।
प्रकट करत निर्गुण सगुण शिवा निवाजी दान॥

शि० भ०, १४३

इस प्रकार से ज्ञान की उत्कर्षता दिखलाते हुए निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार के ज्ञानियों का आदर शिवा जी अपने दान से करता है। साथ

ही पक्षपात हीनता का भी विश्लेषण इसमें आ जाता है जो कि हिन्दू मुसलमान दोनों प्रकार के ज्ञानियों के प्रति वह प्रदर्शित करता है।

अब युद्ध वीर का भी एक उदाहरण दृष्टिगत कीजिये जो कि वास्तव में वीररस के निरूपण के अन्तर्गत आता है। अन्य वीर भावनाएं दान, दया, ज्ञान, कर्म और धर्म की विचारधारा गौण रूप में ही वीररस के अन्तर्गत गिनी जा सकती हैं। अतः स्पष्ट है कि युद्ध के रूप में ही वीररस का सच्चा स्फुरण हो सकता है। यथा —

उमड़ि कुंड़ाल में खवास खान आये भनि,
भूषन त्यों धाये शिवराज पूरे मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहिनाने घोर,
मूंछें तरराने मुख वीर धीर जन के॥
एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरैं मार बीच वे सम्हार तन के।
कुंडन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर,
जीरन ऊपर के खड़ाके खडगन के॥

शि० भू०

इस छन्द में वीररस का ऐसा आकर्षक वर्णन किया गया है कि वीरता का साक्षात् मूर्त रूप सामने आ जाता है और उत्साह का पारावार-सा उमड़ने लगता है। वास्तविक सजीवता इसी के भीतर निहित है जो नवजीवन प्रदान कर सकता है।

वीररस के अन्तर्गत अन्य रसों का विवेचन

महाकवि भूषण की धारणा थी कि रसराज वास्तव में वीररस ही है, शृङ्गाररस नहीं। क्योंकि शृङ्गार तो जीवन को विकृत तथा क्षीण भी कर सकता है और वीररस उत्साह प्रदान कर कार्य क्षेत्र में बढ़ने के लिये अग्रसर करता है अतः उन्होंने इसी को रसराज माना है। इसके लिये एक प्रयत्न उन्होंने यह भी किया था कि वीररस के अन्तर्गत सब रसों को

व्यक्त करके उसकी महत्ता प्रकट कर दी थी। इसके पूर्व सभी आचार्य शृङ्गाररस को रसराज मानते चले आ रहे थे। अतः स्पष्ट है कि भूषण का यह प्रयत्न अभूत पूर्व तथा मौलिक था जिसने अनेक नयी-नयी उद्भावनाओं को जन्म देने का प्रयत्न किया था।

अब देखिये कि वीररस के अन्तर्गत शृङ्गाररस को कवि ने कितने सुन्दर और आकर्षक रूप में चित्रित किया है। यथा—

मेचक कवच साजि बाहन बयारि बाजि,
गाढ़े दल गाजि उठे दीरघ दुखन के।
भूषन भनत समसेरें सोहैं दामिनी ह्वै,
महामद कामिनी के मान के कदन के।
पैदरि बलाका धुरवानि की पताका देखि,
दौरि उठी ब्रज बधू सूने ही सदन के।
न करु निरादर पिया सों मिलु सादर ये,
आये वीर बादर बहादुर मदन के।

शि० भू०, फुट० ४६

इस छन्द में कवि ने बादलों और सैनिकों का रूपक देकर शृङ्गाररस की भावना को वीररस मय बनाने का प्रयत्न किया है तथा दिखला दिया है कि वीररस की महत्ता शृंगार पर कितनी गहराई तक प्रभाव डाल सकती है।

अब देखिये कि हास्यरस को वीररस के सहयोगी रूप में किस प्रकार से चित्रित किया जा सकता है। इसका भी नमूना देखिये—

मारि कर पात साही खाक साही कीनी जिन,
छीनि लीनी छिति हद सब सरदारे की।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सबै,
हिसि गई हिम्मति ही हियरे हजारे की।
भूषन भनत भारी धौंसा की धुकार बाजै,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़ै भारे की।

दूल्हौ सिवराज भयौ दच्छिनी दमाकदार,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की।

शि० बा०, ३६

इस छन्द में शिवा जी की वीरता का चित्रण करते हुए दिल्ली को सितारा नगर की दुलहिन के रूप में कथन करके विनोद की मात्रा को गहरा रूप दे दिया है। इस प्रकार से वीररस के अन्तर्गत हास्यरस का स्पष्टीकरण करके छन्द में अच्छी सजीवता भर दी है।

अब अवलोकन कीजिये कि इस महाकवि ने अद्भुत रस को वीररस के सहयोगी रूप में किस प्रकार से अंकित किया है। यथा—

तादिन अखिल खल भलै खल खलक में,
जादिन शिवाजी गाजी नेक करखत है।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की
दारगन भाजत न वार परखत हैं।
छूटे बार बार छूटे वारन ते लाल देखि,
भूषन सुकवि बरनत हरषत है।
क्यों न उत्पात होंहि बैरिन के झुंडन में,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं।

शि० भू० छं० १६०

इस में "कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं" पदांश ने इस छंद को आश्चर्य मय बना दिया है जो कि वीररस के साथी रूप में भयानक रस के अन्तर्गत दिखलाया गया है।

इसके पश्चात् वीररस के अन्तर्गत करुणारस का भी एक उदाहरण लीजिये जिसमें करुणारस की एक गहरी छाप भरी हुई है।

शुंडन समेत काटि विहद मतंगन कौं,
रुधिर सौं रंग रन मण्डल में भरिगौ।
भूषन भनत तहाँ भूप भगवन्तराय,
पारथ समान महाभारत सौं करिगौ।

मारे देखि मुगल तुराव खान ताही समय,
काहू अस जानी मानौ नट सौ उचरिगौ ।
बाजीगर कैसी दगाबाजी करि बाजी चढ़ि,
हाथी हाथा हाथी तें सहादति उतरिगौ ।

भू० ग्रं०, छन्द फुटकर

इस छन्द में "सहादति उतरिगौ" में करुणरस कूट-कूट कर भरा है जो भगवन्तराय की विजय में बाधक बन मृत्यु का कारण हुआ था। यह पूरा छंद वीररस से ओत प्रोत है। परन्तु अन्तिम-पदांश ने उसे करुणा से युक्त कर दिया है।

एक छन्द और दृष्टिगत कीजिये जिसमें शान्तरस को वीररस के अन्तर्गत लाकर रखा गया है। यथा—

देह देह देह फिर पाइये न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन जाइबो ।
जेते मनि मानिक हैं ते ते मन मानिक हैं,
धराही में धरे ते तो धरा ही धराइबो ।
एक भूख राखै भूख राखै मति भूखन की,
यही भूख राखै भूप भूखन बनाइबो ।
गगन के गौन जम गिनन न दैं हैं नग,
नगन चलैगौ साथ नग न चलाइबो ।

भू० ग्रं०, फुट० ५५

यह छन्द आदि से अन्त तक करुणरस से ओत-प्रोत है। केवल एक पदांश ने उसमें वीररस की गहरी पुट देदी है। "भूप भूखन बनाइबो" में राजनीतिक आधार पर राजाओं का निर्माण ही भूषण की भावना का मूलाधार था और इसी ने इस छन्द में वीररस की विचारधारा को महत्व प्रदान किया है। इस प्रकार से वीररस के अन्तर्गत बड़े ही अच्छे रूप में करुणरस का चित्रण किया है जिससे कवि की क्रांतिकारी भावना भली भाँति प्रदर्शित होती है।

साहित्यशास्त्र में रौद्ररस को वीररस का सहयोगी कहा गया है। इसका भी एक नमूना लीजिये—

सबन के ऊपर ही ठाढ़ौ रहिबे के जोग,
ताहि खरौ कियौ जाय जारन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसीले गुस्सा धारि मन,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महावीर बलकन लाग्यौ,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमकते लाल मुख सिवा कौ निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।'

शि० ग्रं०, फुटकर १७

इस कवित्त में आदि सेअन्त तक रौद्ररस ओत-प्रोत है जो कि वीर रस की महत्ता को उग्र रूप में व्यक्त करता है। इसी प्रकार से भयानक रस का भी अवलोकन कीजिये—

मांगि पठायौ सिवा कछु देस वजीर अजानन बोल गहेना।
दौरि लियौ सरजा परनालौ यों भूषन जो दिन दांय लगेना।
धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आइगो खान खवास के फैना।
भैं भर की कर की दर की धर की दिल आदिल साह की सैना॥

शि० भू०, छन्द २५५

इस छन्द में वीररस के सहायक रूप में भयानकरस का चित्रण किया है। जो कि शास्त्रीय विधान माना गया है। इस छन्द में भयानक-रस का अच्छा परिपाक हुआ है जो कि शिवा जी के आतंक तथा आक्रमण से बीजापुर की सेना पर पड़ा था। अब एक उदाहरण वीभत्स रस का भी लीजिये जो कि वीररस की गहरी भावना को व्यक्त करता है जिसे मार-काट और विकट युद्ध के परिणाम रूप में माना जाता है। यथा—

दिल्ली दल दलै सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकल है।

किल कति कालिका कलेजे की कलकि करि,
करिकैं अलल भूत भैरों बमकत हैं॥
कहूँ रुंड मुंड कहूँ कुंड भरे श्रोनित के,
कहूँ बखतर केरि झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध परी,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं॥
शि० बा०, २९

इस छन्द में महाकवि भूषण ने सलहेर युद्ध का वर्णन करते हुए वीभत्सरस का बड़ा ही आकर्षक चित्रण किया है। इस प्रकार से इस महाकवि ने केवल वीर रस का चित्रण करके ही इतिश्री नहीं कर दी वरन् उसके शास्त्रीय विधान और उसकी महत्ता को भी भली भाँति व्यक्त कर दिया है। यही नहीं इससे भी बढ़ कर वीररस को रसराज के पद पर प्रतिष्ठित करने का भी प्रयत्न किया है। जिसे वैदिक काल के पश्चात् से शृंगार रस ने अधिकृत कर रखा था। भूषण की यह विशेषता अन्य कवियों की अपेक्षा इसे भिन्न रूप दे देती है जो कि भारतीय परंपरा के मूल रूप से अधिक मेल खाती है और हमारी संस्कृति को नवोत्थित रूप देकर समाज को नवजीवन प्रदान करती है।

आलंकारिता

जहाँ भूषण का स्थान उच्च कोटि की राजनीतिक भावनाओं को विस्तार देने, उत्कृष्ट वीररसमय साहित्य के निर्माण करने तथा अनेक समाज सुधारक विचार धाराओं को प्रस्फुटित कर नवजीवन प्रदान करने में प्रमुखता रखता है वहाँ उन्होंने शास्त्रीय विधान अलंकार शास्त्र आदि में भी एक अनोखा मोड़ देने का प्रयत्न किया है। इस विषय में इस महाकवि ने हिन्दी अलंकार शास्त्रियों का ही पथ-प्रदर्शन देने का प्रयत्न नहीं किया वरन् संस्कृत आचार्यों की स्थापनाओं को भी विकसित किया है।

भूषण की इस महत्ता को न समझने के कारण अनेक विद्वानों ने भूषण की रचना में बहुत-से अलंकार संबंधी दोष ढूँढ़ निकाले हैं और बड़े गर्व के साथ लिखा है कि भूषण ने अलंकारो के अशुद्ध लक्षण लिखने तथा भ्रमपूर्ण उदाहरण देने की भी पर्याप्त भूलें की हैं। एक सज्जन ने उक्त दोष भूषण कवि के सिर मढ़ते हुए लिखा है—

"इन्होंने (भूषण ने) सीधे किसी संस्कृत अलङ्कार ग्रंथ को भी अपना आधार नहीं बनाया; वरन् हिन्दी के कवियों में अलङ्कारों के संबंध में जो सामान्य भावना प्रचलित थी उसी को पकड़ा है। यही कारण है कि भूषण के लक्षण और उदाहरण कई जगह अस्पष्ट और दूषित हैं।" इसी प्रकार के अनेक आक्षेप भूषण के अलंकारों के विषय में किये गये हैं। एक अन्य विद्वान् ने पंचम प्रतीप के लक्षण को अशुद्ध ठहराया है और कहा है कि यह परिभाषा प्राचीन अलङ्कार शास्त्रों के अनुरूप नहीं है। इस पर हमें गंभीरता से विचार करना है कि ये आक्षेप कहाँ तक उचित हैं और उसकी वास्तविकता का रूप क्या है ?

भूषण ने 'पंचम प्रदीप' का लक्षण इस प्रकार से लिखा है—

"हीन होय उपमेय सों नष्ट होत उपमान।"

इसी लक्षण के चन्द्रालोक कार ने इस भाँति लिखा है—

"प्रतीप मुपमानस्य कैमर्थ्य मपि मन्यते।"

अब चन्द्रालोक के प्रतीप का उदाहरण भी दृष्टिगत कीजिये—

यत्त्वन्नेत्र समान कान्ति सलिले मग्न तदिन्दीवरम्।
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।
ये ऽपित्वद् गमनानुसारि गतयस्ते राज हंसा गता।
स्तव सादृश्य विनोद मात्र मपि मे दैवेन न क्षम्यते।

(कुवलयानन्द पृ० १२)

चन्द्रालोककार ने पंचम प्रतीप के लक्षण में 'कैमर्थ्य मपि' कह कर स्वयं द्विविधा पैदा कर दी है। इसका कारण भी है क्योंकि लक्षण आक्षेप के अन्तर्गत आ जाता है जिसका लक्षण साहित्यदर्पणकार ने इस प्रकार से दिया है—

वस्तुना वस्तु मिष्टस्य विशेष प्रतिपत्तये।
निषेधा भास आक्षेपो वक्ष्य माणोक्तिगो द्विधा॥

(साहित्यदर्पण दशम् परिच्छेद, पृ० २०२

इसी लक्षण को चन्द्रालोक कार ने इस प्रकार से लिखा है—

निषेधा भास माक्षेप बुधाः केचिन मन्यते।

(कुवलयानन्द, पृ० १६)

यहाँ स्पष्ट है कि भूषण ने पञ्चम प्रतीप को आक्षेप की सीमा से बचाने और द्विविधा से अलग रखने के लिये ही इस परिभाषा को उसी रूप में ग्रहण न कर यह कहा है कि "यदि उपमान उपमेय से हीन हो जाय अथवा बिल्कुल लुप्त हो जाय तो पञ्चम प्रतीप होता है।" भूषण को यह लक्षण 'चन्द्रालोक' के प्रथम प्रदीप के उक्त उदाहरण के ध्यान मे आने से ही सूझा है। उसी भाव पर भूषण का लक्षण घटित होता है जो 'चन्द्रालोक' के 'प्रथम प्रतीप' के लक्षण "प्रतीप मुप मानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्" से भिन्न है। इस लक्षण की रचना के समय भूषण के मस्तिष्क मे तीन भावनाएँ काम कर रही थी; वे ये हैं—

(१) उसे कैमर्थ्य से बचाना जिससे उनका लक्षण 'आक्षेप' के अन्तर्गत न आ जाय। (२) 'चन्द्रालोक' के प्रथम उदाहरण का समावेश कराना और (३) द्विविधा में न रह कर लक्षण को स्पष्ट कर देना।

'कैमर्थ्य' रहने से इसका आक्षेप में कहीं अन्तर्भाव न हो जाय इसी को बचाने के लिये भूषण ने कैमर्थ्य के स्थान पर 'हीन' शब्द रक्खा है। भूषण का भाव यह है कि पंचम प्रतीप के पर्यवसान में उपमान की हीनता किसी न किसी प्रकार से स्पष्ट रूप में होनी आवश्यक है। अधिकतर उपमेय के आगे उपमान की तुच्छता दिखाने से वह व्यक्त होती है अतः इस दृष्टि से भूषण का लक्षण बिल्कुल निर्दोष है।

पंचम प्रतीप के प्रथम उदाहरण में भूषण के "तो सम हो सेस सो तो वसत पताल लोक, ऐरावत गज सो तो इन्द्रलोक सुनिये।" आदि छन्द में उपमान के स्पष्ट रूप से लुप्त होने का भाव व्यक्त किया गया है। उसी को भूषण ने नष्ट शब्द से व्यक्त किया है। यह उदाहरण 'चन्द्रालोक के प्रथम प्रतीप के उदाहरण के ढंग पर लिखा गया है।

पंचम प्रतीप के दूसरे और तीसरे उदाहरणों में भूषण ने "कुंद कहा पय वृन्द कहा अरुचन्द कहा सरजा जस आगे।" तथा "यों सिवराज कौ राज अडोल......कुँडलि कोल कछू न कछू है।" में उपमान की तुच्छता प्रकट की है। न्यून और हीन शब्दों में महान अन्तर है इसी से भूषण ने अपनी परिभाषा में 'हीन' शब्द का प्रयोग किया है। अतः इस परिभाषा में व्यतिरेक की व्याप्ति कभी हो ही नहीं सकती। फिर भी "काव्य प्रकाशकार मम्मट" ने उपमालंकार के प्रकरण में अपने ग्रंथ 'काव्य प्रकाश' के पृ० ४४६ पर लिखा है :—

"रसादिस्तु व्यङ्ग्योऽर्थोऽलङ्कारान्तञ्च सर्वथा।
व्यभिचारी त्यगण यित्यैव तद लंकारा उदाहृता॥"

इस कथन से स्पष्ट है कि एक अलंकार के साथ अन्य अलंकार अवश्य रहते हैं और वे अनायास ही आ जाते हैं परन्तु उनमें उदाहरण

स्वरूप प्रधान अलंकार ही लिया जाता है। अतः व्यतिरेक की शंका पैदा करना निर्मूल है।

इस विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लक्षण की भूल भूषण की नहीं है वरन् चन्द्रालोककार की है जिसे आलोचक महोदय भूषण के सिर थोप रहे हैं। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि हिन्दी में महाकवि भूषण एक प्रमुख आचार्य हुए हैं जिन्होंने संस्कृत आचार्यों का अन्धानुसरण नहीं किया वरन् उनकी भूलों का परिमार्जन करके शास्त्रानु-मोदित संशोधन द्वारा अपने आचार्यत्व की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखा है। इससे हम भूषण की वास्तविक योग्यता का अनुमान कर सकते हैं। इसी प्रकार से अन्य अलंकारों के विषय में भी भूषण के लक्षणों एवं उदाहरणों में जो दोष आलोचकों द्वारा दिखलाये गये हैं वे उनकी असावधानी के द्योतक हैं। आवश्यकता इस बात की है कि अलं कारों की व्याख्या रूप से शिवराज भूषण पर एक विस्तृत विवेचनात्मक ग्रंथ लिखा जाय तभी उन सब शंकाओं का समाधान भी हो सकेगा जो भूषण पर किये जाते हैं। साथ ही अलंकारों की शुद्ध परिभाषा और उदाहरणों का समन्वय भी ठीक-ठीक हो सकेगा।

महाकवि भूषण की उदार दृष्टि

समाज सुधार की भावना

महाकवि भूषण समाज-सुधार के प्रबल पक्षपाती थे। वर्ण-व्यवस्था की वर्तमान संकुचित जन्मपरक प्रणाली को वे राष्ट्र के लिये घातक समझते थे। स्त्री जाति की मान-मर्यादा सुरक्षित रखने के लिये वे सब कुछ उत्सर्ग करने के लिये तैयार रहने के लिये उपदेश देते थे। राष्ट्र-निर्माण के लिए वे केवल हिन्दू-मुसलिम मेल के ही समर्थक न थे वरन् आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित कराना भी उनका लक्ष्य था जिसकी पूर्ति कार्य रूप में परिणत करके उन्होंने प्रत्यक्ष कर दी थी।

ज्ञान का विस्तार कर अन्ध विश्वासों को दूर करना वे अपना प्रधान कर्त्तव्य समझते थे। न्याय की महत्ता को वे सर्वोपरि समझते थे। नीच-ऊँच के भेदभाव को वे दूर करना चाहते थे। यहाँ तक कि अनीश्वरवादी सत्यनिष्ठ को भी वे आदरणीय मानते थे। मानव में उदारता, सत्पात्र को दान, समता का आदर्श तथा महानतम तपस्वी की भी अहमन्यता को असहनीय बतलाते थे। समाज में उत्साह और साहस भरने का प्रयत्न उनकी सर्वोत्कृष्ट देन है। इन्हीं भावनाओं को क्रियात्मक रूप देने में भूषण की महत्ता निहित है। इन पर विस्तार से विचार करने के लिये हमें इस महाकवि की रचना का आलोड़न एवं विवेचन करने की आवश्यकता है—

वर्ण-व्यवस्था के सुधार और राष्ट्र-निर्माण के लिये वे मुसलमानों से विवाह सम्बन्ध की व्यवस्था देते हैं। इसके लिये व्यवस्था देकर ही चुप नहीं बैठ जाते वरन् कार्य रूप में परिणत भी कर देते हैं, यथा—

भेजें लिखि लगन शुभ गनिक निजाम बेग,
इतैं गुजरात उतैं गंग ज्यों पतारा की।

एक जस लेत अति फेरा फिरि गढ़हू कौं,
खंडि नव खंड दिये दान ज्यों ऽत्र तारा की।
ऐसे ब्याह करत बिकट साहू साहन सों,
हद हिन्दुश्रान जैसे तुरुक ततारा की।
आवत बरात सजे ज्वान देस दच्छिन के,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारा की॥

इससे स्पष्ट है कि भूषण हिन्दू-मुसलमान विवाह को उचित ही नहीं समझते थे वरन् राष्ट्र-निर्माण के लिये इसे अत्यन्त आवश्यक ठहराते थे साथ ही साहू छत्रपति के समर्थन की भी वे चर्चा करते हैं। इस सम्बन्ध में महाराजा छत्रसाल की वेश्या से उत्पन्न कन्या मस्तानी का विवाह साहू के मंत्री बाजीराव पेशवा से करवा कर उन्होंने क्रियात्मक रूप भी दे दिया था जिसमें साहू जी भी पूर्ण रूप से सहमत थे। यह मस्तानी अत्यन्त सुन्दर, गुणवती और वीराङ्गना थी। सैन्य संचालन में भी इसने दक्षता प्राप्त कर ली थी। अतः पेशवा को युद्धों में इससे बड़ी सहायता मिलती थी। इससे दो पुत्र भी उत्पन्न हुये थे। परन्तु महाराष्ट्र ब्राह्मणों के विरोध के कारण इन बालकों को मुसलमानी रूप देने के लिये वे बाध्य हुए थे। यद्यपि भूषण के उद्योग से जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने काशी तथा अन्यत्र के पंडितों से इनके हिन्दू रूप में स्वीकृति देने की व्यवस्था भी दिलवाई थी जिसे क्वींस कालेज बनारस ने सम्पादन कर प्रकाशित भी करवा दिया है। परन्तु महाराष्ट्रों की कट्टर पन्थी भावना इसमें बाधक बन कर ही अग्रसर हुई थी।

हमारे चरित नायक ने जयपुर नरेश राजा मानसिंह और राजा बीरबल की इसीलिये प्रशंसा की थी क्योंकि ये हिन्दू मुसलिम मेल के पक्षपाती थे। जयपुर नरेश ने तो बीरबल की सलाह से अपनी बुआ का विवाह अकबर से करके इस उदाहरण की स्थापना ही कर दी थी जिसका अनुकरण चित्तौड़ को छोड़ कर शेष राजस्थान के सभी राजाओं ने किया था। इसी

भावना को महत्व देने के लिये भूषण ने राजा मान की प्रतिष्ठा अत्यन्त ओजस्वितापूर्ण शब्दों में की है, देखिए—

अकबर पायो भगवन्त के तनै सौं मान,
बहुरि जगत सिंह महा मरदाने सों।
भूषण त्यों पायौ जहाँगीर महासिंह जू सों,
साहिं जहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों।
अब औरङ्गजेब पायो रामसिंह जू सों,
औरौ दिन दिन पैहैं कूरम के माने सों,
केते राव राजा मान पावैं पात साहन सों,
पावै बादशाह मान मान के घराने सों॥

भूषण ग्रन्थावली, फुटकर छन्द ३४

इससे स्पष्ट है कि मान सिंह द्वारा अकबर से सम्बन्ध की स्थापना होने से ही भूषण ने मान के वंश की प्रतिष्ठा निर्धारित करवाई है। महाराजा मानसिंह की विवाह सम्बन्धी नीति को भूषण प्रशंसनीय मानते थे इसी से उक्त छन्द में मान की तथा शिवराज भूषण के छन्द २७ में राजा बीरबल की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

बुन्देल नरेश महाराजा छत्रसाल के गुरु स्वामी प्राणनाथ के विचार भी भूषण की भावना के अनुकूल थे। वे भी ऐसे विवाह करवा कर राष्ट्र-निर्माण के लिये क्षेत्र प्रस्तुत करने को उत्सुक थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने कुलज़म (अंजीर रास) नामक एक बड़े ग्रंथ की रचना की थी। इसमें हिन्दू-मुसलमानों के मिश्रित भावों को एक रूपता देने के लिये कृष्ण और मोहम्मद को समान रूप में चित्रित करने के लिये बड़े विस्तार से विवेचना की गई है। यह रचना पन्ना (बुंदेलखंड) के एक मन्दिर में तथा अमीनुद्दौला पबलिक लाइब्रेरी लखनऊ में हस्तलिखित रूप में प्रस्तुत है। परन्तु आजकल लाइब्रेरी वाली प्रति वहाँ दृष्टिगोचर नहीं होती।

भूषणकालीन ये घटनाएं तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती है। प्राणनाथ स्वामी के सम्बन्ध में

पन्ना में यह किंवदन्ती है कि शुजाअ (औरङ्गजेब का भाई) ही अराकान से भाग कर सिंध पहुँचा था और वहाँ से बुन्देलखंड में आकर महाराजा छत्रसाल के गुरु के रूप में उक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इसी से अंजोर गस की भाषा में सिंधी भाषा का पुट अधिक मात्रा में मिलता है। आवश्यकता इस बात की है कि इनका गंभीरता से अध्ययन एवं अन्वेषण किया जाय ताकि ये रचनाएँ राष्ट्र-निर्माण में हमारी अधिक सहायता कर सकें।

भूषण मुसलमानों को लड़कियाँ देकर ही एक तरफा सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे वरन् उनकी अधिक लड़कियों को हिन्दू समाज में विवाहित देख कर ही वे राष्ट्रीय पथ की प्रशस्ति मानते थे। इसीलिये उन्होंने इस सुधार पर अधिक बल दिया है। साहू औरङ्गजेब की जेल में रहने के कारण मुसलमानी संस्कृति से भी खूब परिचित थे।

इस विषय में पेशवा के विवाह के अतिरिक्त एक दूसरा उदाहरण भी मिलता है जिसमें भूषण की सम्मति को प्रमुखता देकर ही विवाह सम्बन्ध निर्धारित हुआ था। जब भगवन्तराय खीची ने कोड़ा जहानाबाद के मुसलमान सूबेदार को मार कर उसके किले पर अधिकार किया था तब लूट में उस सूबेदार की लड़की भी मिली थी जिसका विवाह खीची ने भूषण की सलाह से अपने राजकुमार रूप सिंह से कर लिया था ये दो ऐतिहासिक तथ्य होने से हम भूषण की भावना का भली प्रकार से अनुमान कर सकते हैं। साथ ही उनकी सुधारपद्धति का स्पष्टीकरण भी इसी आधार पर किया जा सकता है।

भूषण के हृदय में स्त्री-मर्यादा और उसकी रक्षा का प्रमुख स्थान था। इसीलिये वे प्राणों की बाजी लगा कर भी स्त्री मान और उसकी मर्यादा की रक्षा करना उचित समझते हैं। इसीलिये वे शिवराज भूषण में लिखते हैं—

जाहु जनि आगे खता खाहु मति यारो गढ़—
नाह के डरन कहैं खान यों बखान कै।

भूषण खुमान यह सो है जेहि पूना माहि,
लाखन में सासता खाँ डार्यौ बिन मान कै।
हिन्दुआन द्रुपदी की इज्जति बचैवे काज,
झपटि विराट पुर बाहर प्रमान कै।
वहै है सिवाजी जेहि भीम अकेले मार्यो,
अफजल कीचक कौं कीच घमसान कै।

शि० भू०, ३३

इस छन्द के तीसरे चरण में द्रोपदी की मान रक्षा के लिये विराट नगरी के बाहर भीमसेन ने कीचक सेनापति का किस प्रकार बध किया था इसका इस छन्द में बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया है। इसी प्रकार से शिवा जी द्वारा भारतीय समाज की मान-मर्यादा बचाने के लिये अफ़जल ख़ाँ रूपी कीचक का अकेले ही बध कर डाला था। इसके पश्चात् पूना में शाइस्ता ख़ाँ को भी अपमानित कर तथा वहाँ से भगा कर दक्षिण की मर्यादा सुरक्षित कर दी थी। इससे स्पष्ट है कि भूषण स्त्री समाज की रक्षा और उसकी मर्यादा को कितना महत्व देते थे। शिवा जी ने भी अफ़जल का बध और शायस्ता खाँ की दुर्गति करके स्त्री समाज की रक्षा मुख्यतया तथा पूरे दक्षिण की रक्षा साधारणतया की थी। औरङ्गजेबी सेना के अत्याचार स्त्री समाज पर अत्यधिक होते थे अतः इसे बहुत महत्व दिया गया है।

महाकवि भूषण ने छोटे-छोटे संकेतों द्वारा अपनी रचनाओं में अनेक मार्मिक भावनाएँ भर दी हैं। इसीलिये वे शिवाजी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

"आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही,
जगदेव जनक जजाति अंबरीक सो।"

शि० भू०, ३४१

इस पद्यांश में भूषण शिवा जी की चार राजाओं से तुलना करते हुए राजा जगदेव, राजा जनक, राजा ययाति और राजा अंबरीष

की उपमा देते हैं। राजा जगदेव एक परमार राजा था जो अत्यन्त वीर, युद्ध प्रिय और साहसी था। राजा जनक मिथिला नरेश सीता के पिता थे जिनकी आध्यात्मिक भावना एवं ब्रह्मज्ञान की स्थिति अत्युच्च कोटि की थी। राजा ययाति एक अत्यन्त समाज सुधारक नरेश थे जिन्होंने अपने गुरू शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से विवाह कर सकुचित विचारधारा का परित्याग कर दिया था तथा वर्ण-व्यवस्था का नया स्वरूप प्रतिपादन कर राष्ट्र के लिये नव आदर्श प्रदान किया था चौथा उदाहरण अम्बरीष का है जिसने दुर्वासा ऋषि के शाप की भी अवहेलना कर एक सत्यनिष्ठ भावना राष्ट्र के लिए स्थापित की थी। इन उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि भूषण वीर भावना के साथ आध्यात्मिकता, समाज सुधार तथा वर्ण-व्यवस्था की उत्कृष्ट योजना राष्ट्र-निर्माण के लिये अत्यन्त आवश्यक मानते थे साथ ही उच्च ज्ञान और तप से उत्पादित घमड को भी वे जड़-मूल से मिटा देना चाहते थे। इसी कारण वे उक्त चारां उपमाओ को अत्यन्त महत्वपूर्ण ठहराते हैं।

इसी प्रकार से भूषण ने एक अन्य उदाहरण द्वारा ऊपर की भावना से अलग दूसरी विचारधारा समाज को देने का प्रयत्न किया है। इसी लिये वे कहते हैं—

भूलिगे भोज से विक्रम से,
भई बलि बेनु की कीरति फीकी। शि० भू०, २६७

इस छन्दांश मे भूषण कवि शिवा जी में अन्य चार गुणों का आरोप करते हुए राजाभोज, राजा विक्रमादित्य, राजा बलि तथा राजा वेणु की तुलना शिवाजी से करते हैं और उसे इन चारों से ही अधिक प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण ठहराते हैं।

राजा भोज धारा नगरी का राजा था जो कि अत्यन्त विद्याव्यसनी संस्कृत भाषा का उद्धारक एवं कवियों का महान आश्रयदाता था। कवि भूषण ने शिवाजी को राजा भोज से भी उत्तम विद्या प्रेमी एव कवियो का आश्रयदाता ठहराया है। राजा विक्रमादित्य अत्यन्त न्यायशील राजा थे

जिसके नाम का विक्रम संवत् प्रचलित है जो कि उज्जैन नगरी में शासन करता था उसके न्याय की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। शिवा जी में भी इससे उत्तम न्याय शीलता का कथन किया गया है।

राजा बलि दानवो का राजा था परन्तु उसकी उदारता, दानशीलता और ईश्वरनिष्ठा पुराणों मे प्रसिद्ध है। इसने वामन भगवान को अपना सारा राज्य दान दे दिया था तथा अन्य अनेक सद्गुणों का आरोप इसमे किया जाता है। इस प्रकार से भूषण निकृष्ट कुल से उद्भूत उत्तम व्यक्ति को भी सम्मान्य तथा शासन के योग्य ठहराते थे। पुराणो में राजा बलि को इन्द्र की पदवी से भी विभूषित किया गया है।

राजा वेणु अयोध्या का नरेश था। यह एक वैज्ञानिक अनीश्वरवादी राजा था जिसने ईश्वरनिष्ठा को तिलाजलि दे दी थी परन्तु उसमें न्याय-प्रियता और निष्पक्ष शासन की कठोरता थी। अतः प्रजा को भी अपनी विचारधारा के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया था। इसी से रुष्ट हो उसे प्रजा ने बध कर डाला था इतना होते हुए भी भूषण उसकी निष्पक्ष दृढ़ता की सराहना करते तथा वैज्ञानिकता को महत्व देते हैं। इन उदाहरणो से हम कवि की विद्या-प्रेमी भावना, न्याय-प्रियता, ऊँच-नीच भेद-भाव रहित उदारता तथा वैज्ञानिकता के रूप को भली भाँति समझ सकते हैं। साथ ही उनकी स्वतन्त्र विचारधारा किस प्रकार से अनुगमन कर रही थी इसका भी स्पष्टीकरण हो जाता है।

यही नहीं, "गो अमीर न बाचि गुनी जन धोषैं" मे भी हम भूषण की विचार-सरणी को एक नये रूप में ही प्रस्फुटित होते पाते हैं जिसमें समाज-सुधार की अनेक प्रणालियाँ प्रवाहित होती दिखलाई देती हैं। अतः हम जोर देकर कह सकते हैं कि भूषण एक सुधारवादी कवि थे जिसने राष्ट्र को एक नये रूप में ढालने का प्रयत्न किया था।

साम्प्रदायिक सद्भावना

महाकवि भूषण की रचना पर यह आक्षेप किया जाता है कि उसने

हिन्दू-मुसलमानों में विरोध बढ़ाने का प्रयत्न किया। इस कारण उसमें राष्ट्रीय भावना का अभाव है। यह आक्षेप बहुत ही अनुचित है और उसकी विचारधारा को ठीक ठीक न समझने के कारण ही कुछ लोगों ने अज्ञानवश ऐसी भावना भरने का प्रयत्न किया है।

हम ऊपर के पृष्ठों में यह प्रमाणित कर चुके हैं कि भूषण की रचना में हिन्दू-मुसलिम के पारस्परिक विवाह कराने पर जोर दिया गया है जिसका वे मौखिक उपदेश देकर ही चुप नहीं बैठ गये थे वरन् क्रियात्मक रूप देकर वैसे विवाहों की स्थापना भी करवा दी थी जिसके कुछ उदाहरण भी दिये जा चुके हैं। यही नहीं भूषण ने निर्गुण और सगुण उपासकों को शिवाजी द्वारा दान दिलवाया है वह भी हिन्दू-मुसलिम मेल की भावना को ही प्रतिपादन करता है अतः वे कहते हैं—

चाहत निर्गुण सगुण को ज्ञानवन्त की बान।
प्रगट करत निर्गुण सगुण शिवा निवाजी दान॥

शि० भू०, १४३

चूँकि हिन्दू सगुणोपासक हैं और मुसलमान प्रायः निर्गुण उपासना करते हैं अतः शिवाजी दोनों को ही उदारता से दान देता है।

शिवाजी ने एक आज्ञा प्रचारित कर रखी थी जिसे तत्कालीन इतिहासकार खफ़ी खां ने इस प्रकार से व्यक्त किया है। देखिये—

He made it a rule that whenever his followers went plundering, they should do no harm to the mosques, the book of God or the woman of any one "Whenever a copy of the sacred Quran came in to his hands, he treated it with respect and gave it to some of his Mussalman followers."

अर्थात्—"शिवा जी ने यह नियम बना दिया था कि जब उसके सिपाही लूट के लिये जावें तो वे कभी किसी मसजिद ईश्वरदत्त किताब क़ुरान, अथवा किसी की स्त्री को कदापि हानि न पहुँचावें। जब कोई

क़ुरान की पुस्तक उनके हाथ लगे तो उन्होंने उसके प्रति आदर प्रदर्शित किया जाय और उसे अपने किसी साथी मुसलमान को दे दी जाय।" इससे स्पष्ट है कि शिवा जी का मुसलमानों के प्रति किसी प्रकार का भी विद्वेष न था।

इसी भावना को कई मुसलमान लेखकों ने अपनी-अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है। बशीरुद्दीन अहमद ने अपनी रचना "वाक़ियात मुमलिकात बीजापुरी" में भी इस बात की चर्चा की है। महाकवि भूषण ने इन्हीं सब गुणों पर मुग्ध होकर छत्रपति शिवा जी को अपना आदर्श बनाया था और अपना इष्टदेव मान कर उसी आदर्श की स्थापना देश भर में करने का प्रयत्न किया था। अतः भूषण हिन्दू-मुसलिम विरोधी हो ही कैसे सकता था।

भूषण ने मुसलमान जाति के प्रति न तो कभी विद्वेष प्रकट किया और न कभी उनकी भर्त्सना ही की है। हाँ, औरंगजेब के प्रति इस महाकवि ने अवश्य कुछ कठोर विचार व्यक्त किये हैं, इसके कुछ कारण भी हैं। इस सम्राट ने हिन्दुओं पर घोर अत्याचार और उत्पीड़न कर रखा था। उनके मंदिरों को नष्ट करना, हिन्दुओं को जबरन् मुसलमान बनाना, साधू-संन्यासियों का वध करना उसका दैनिक कृत्य हो रहा था। यही नहीं, उसने अपने सहोदर भाइयों को कत्ल करवाया, अपने बाप को कैद कर दिया जो पानी के लिये तरस-तरस कर मृत्युगत हुआ था। इससे पारिवारिक विकृति का हिन्दुओं पर भी प्रभाव बिना पड़े नहीं रहा था। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के प्रति भी वह अत्यन्त अनुदार था। इससे वह एक प्रकार से पूरे राष्ट्र का शत्रु बन रहा था। इन्हीं कारणों से भूषण ने उसकी भर्त्सना की है और उसे अत्यन्त निन्दनीय ठहराया है ताकि देश में अनुकरणीय दुर्भावना का विस्तार न हो सके।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि भूषण ने औरंगजेब के पूर्वजों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। देखिये —

"आदि को न जाने देवी देवता न माने सांच,
कहूँ सो पिछानो बात कहत हौं अबकी।
बब्बर अकब्बर हुमाऊँ हद्द बाँधि गये,
हिन्दू औ तुरुक की कुरान वेद ढब की।
और बादसाहन में हुती चाह हिन्दुन की,
जहाँगीर साहजहां साखि पूरें तब की।
कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती,
शिवाजी न होतो तो सुनति होति सब की।"

शिवा बावनी, छन्द ४३

इससे स्पष्ट है कि भूषण कवि बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ बादशाहों की नीति को प्रशंसनीय कहता है जो कि हिन्दुओं के धर्म में कोई बाधा नहीं पहुँचाते थे और उनके प्रति अत्यन्त सहानुभूति रखते थे। यही नहीं, भूषण ने अकबर बादशाह को तो उसकी उदार नीति के कारण राम-कृष्ण जैसे अवतारों की कोटि में ला बिठाया है इसे भी आप कवि के ही शब्दों में अवलोकन कीजिये—

"सतयुग त्रेता औ द्वापर कलयुग माँहि,
आदि भयो नाहिं भूप तिनहूँ ते अगरी।
अकबर बब्बर हुमाऊँ शाह सासन सों,
स्नेह ते सुधारी हेम हीरन ते सगरी।'

भूषण ग्रन्थावली, फुटकर छन्द ४

इसमें हमारे इस महाकवि ने अकबर आदि के विषय में बतलाया है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चारों युगों में ऐसा एक भी राजा नहीं हुआ जैसा अकबर हुआ है। इसने उन पूर्व सम्राटों से कहीं अधिक स्नेह से देश के शासन का संचालन किया था और स्वर्ण तथा हीरों से सम्पन्न कर सारे देश में सुख-समृद्धि का बाहुल्य कर दिया था। इस प्रकार भूषण ने इन बादशाहों को राम-कृष्ण की समकक्षता में बिठा कर औरंगजेब के लिये इस आदर्श को अनुकरणीय ठहराया है। इस उदा-

हरण से हम सरलतया भूषण की हार्दिक भावना का अनुमान कर सकते हैं। इन भावों को व्यक्त करने वाला व्यक्ति यदि किसी के हृदय में सम्प्रदाय विद्वेषी और मुसलमान विरोधी माना जा सकता है तब तो उसकी मति को विकृत रूप में ही मानना उचित होगा।

भूषण ने अनेक छन्दों में औरंगजेब को उपदेश दिया है कि वह बाबर और अकबर के यश को स्थिर रखने का प्रयत्न करे इसके लिये वे कहते हैं—

"दौलत दिली की पाय कहाये आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के विरद बिसारे तैं।"

शि० भू०, छन्द २८१

'आलमगीर' औरंगजेब का ही दूसरा नाम था जिसका अर्थ होता है संसार को ग्रहण (आकर्षित) करनेवाला। इसमें भी कवि उसे यथार्थ पथ का अनुसरण करने के लिये कहता है।

भूषण ने उसके पूर्वजो की ही प्रशंसा नहीं की वंशजों की भी अच्छी प्रशंसा की है औरंगजेब के पोते जहांदार शाह की प्रशंसा करते हुए कवि वर्णन करता है—

डंका के दिये ते दल डंबर उमंड्यौ,
उडमंड्यो उड मंडल लौं खुर की गरद है।
जहां दार शाह बहादुर के चढ़त पैंड,
पैंड में मढ़त मारु राग बन्न नद है।
भूषण भनत घने घूमत हरौल बारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद है।
हद्दन छपद महि मद्द फरनद्द होत,
कद्दन भनद्द से जलद्द हल दद्द है।

इससे सरलतया भूषण की महत्ता और उसकी भावना का अनुमान किया जा सकता है। समाज में उत्साह और नवजीवन लाने के लिये वीर रस की विवेचना अनिवार्य वस्तु है। अतः उसके लिये उपनायक के रूप

मे किसी अत्याचारी, भ्रष्ट, दुर्नीत एवं उद्धत व्यक्ति की आवश्यकता होती है। भूषण के सामने औरंगजेबी अत्याचार पराकाष्ठा को पहुँचे हुए थे। वह भी साम्प्रदायिकता की पक्षपातपूर्ण विचार-सरणी के साथ राष्ट्रीय भावना को भी ठेस पहुँचाने वाले थे।

औरंगजेब ने सूफ़ी फकीर सरमद को सूली दिलवा दी थी और शाह मोहम्मद जैसे विद्वान् दार्शनिक विचारक सन्त को इतना परेशान किया था कि वह अकाल ही काल-ग्रस्त हो परलोक सिधारा था। भूषण ने इन्ही सब कारणो से औरंगजेब को राष्ट्रद्रोही माना था तथा शिवा जी की भावना के अनुकूल आचरण करने का उपदेश दिया था साथ ही उसकी भर्त्सना भी खूब करते गये हैं। इसके भी कुछ नमूने देखिये—

(अ) "और करौ किन कोटिक राह,
सलाह, बिना बचिहौ न सिवा सों," शि० भू०, २१३

(ब) "मेरे कहे मेरु करु सिवा जी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।" शि० भू०,२७८

इससे स्पष्ट है कि भूषण मे राष्ट्रीय भावना आदि से अन्त तक ओत-प्रोत है। उक्त भर्त्सना की सन्नद्धता तभी सामने आती है जब अन्य कोई उपाय कारगर नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदास ने भी समुद्र से पथ न मिलने पर उसको इन शब्दों मे धमकी दी थी—

"विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥"
(रामचरित मानस)

वीररस के उत्पादन के लिये इन भर्त्सनाओ से भी कुछ उत्साह-वर्द्धन होता है और उसके लिये क्षेत्र तैयार हो जाता है। साथ ही जब किसी दुष्ट जन द्वारा समाज के छिन्न-भिन्न होने की आशका होती है तभी देशहित की भावना से उक्त सिद्धान्त लागू किया जाता है। भूषण ने भी इसी का अनुगमन कर राष्ट्र को उद्बुद्ध कर दिया था और स्वराज्य स्थापन की सफलता प्राप्त कर ली थी।

भूषण धार्मिक स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। इसीलिए वे कभी एक दूसरे के साम्प्रदायिक विचारों और धार्मिक कार्यों में बाधा नहीं पहुँचाते थे। इसीलिए ऊपर के छन्दों में बाबर एवं अकबर की भावना को सराहनीय मान कर अनुकरणीय ठहराया है तथा औरंगजेब को भी इस पर चलने की सलाह देने का प्रयत्न किया है। इस विवेचन से यह भली भाँति समझा जा सकता है कि भूषण में हिन्दू-मुसलमान की मेल-भावना उत्कट रूप से काम कर रही थी जिसके लिये वे जीवन भर प्रयत्नशील रहे थे। साथ ही उन पर पारस्परिक विद्वेष बढ़ाने का आरोप तो और भी असत्य है। राष्ट्रद्रोही होने के कारण केवल औरंगजेब को वे निन्द-नीय मानते थे जिसे उन्होंने उपनायक के रूप में अंकित किया है। इसके बिना वीर रस का विवेचन हो ही नहीं सकता। अतः भूषण के उपनायक चुनने में उनकी दक्षता, न्याय प्रियता, सत्यनिष्ठता और राष्ट्रीयता का अच्छा परिचय मिलता है। इसी भावना के प्रभाव से भूषण की रचना को हिन्दी में सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त है।

में किसी अत्याचारी, भ्रष्ट, दुर्नीत एवं उद्धत व्यक्ति की आवश्यकता होती है। भूषण के सामने औरंगजेबी अत्याचार पराकाष्ठा को पहुँचे हुए थे। वह भी साम्प्रदायिकता की पक्षपातपूर्ण विचार-सरणी के साथ राष्ट्रीय भावना को भी ठेस पहुँचाने वाले थे।

औरंगजेब ने सूफ़ी फ़क़ीर सरमद को सूली दिलवा दी थी और शाह मोहम्मद जैसे विद्वान् दार्शनिक विचारक सन्त को इतना परेशान किया था कि वह अकाल ही काल-ग्रस्त हो परलोक सिधारा था। भूषण ने इन्हीं सब कारणों से औरंगजेब को राष्ट्रद्रोही माना था तथा शिवा जी की भावना के अनुकूल आचरण करने का उपदेश दिया था साथ ही उसकी भर्त्सना भी खूब करते गये हैं। इसके भी कुछ नमूने देखिये—

(अ) "और करो किन कोटिक राह,
सलाह, बिना बचिहौ न सिवा सों," शि० भू०, २१३

(ब) "मेरे कहे मेरु करु सिवा जी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।" शि० भू०, २७८

इससे स्पष्ट है कि भूषण में राष्ट्रीय भावना आदि से अन्त तक ओत-प्रोत है। उक्त भर्त्सना की सन्नद्धता तभी सामने आती है जब अन्य कोई उपाय कारगर नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदास ने भी समुद्र से पथ न मिलने पर उसको इन शब्दों में धमकी दी थी—

"विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥"
(रामचरित मानस)

वीररस के उत्पादन के लिये इन भर्त्सनाओं से भी कुछ उत्साह-वर्द्धन होता है और उसके लिये क्षेत्र तैयार हो जाता है। साथ ही जब किसी दुष्ट जन द्वारा समाज के छिन्न-भिन्न होने की आशंका होती है तभी देशहित की भावना से उक्त सिद्धान्त लागू किया जाता है। भूषण ने भी इसी का अनुगमन कर राष्ट्र को उद्बुद्ध कर दिया था और स्वराज्य स्थापन की सफलता प्राप्त कर ली थी।

भूषण धार्मिक स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। इसीलिए वे कभी एक दूसरे के साम्प्रदायिक विचारों और धार्मिक कार्यों में बाधा नहीं पहुँचाते थे। इसीलिए ऊपर के छन्दों में बाबर एवं अकबर की भावना को सराहनीय मान कर अनुकरणीय ठहराया है तथा औरंगजेब को भी इस पर चलने की सलाह देने का प्रयत्न किया है। इस विवेचन से यह भली भाँति समझा जा सकता है कि भूषण में हिन्दू-मुसलमान की मेल-भावना उत्कट रूप से काम कर रही थी जिसके लिये वे जीवन भर प्रयत्नशील रहे थे। साथ ही उन पर पारस्परिक विद्वेष बढ़ाने का आरोप तो और भी असत्य है। राष्ट्रद्रोही होने के कारण केवल औरंगजेब को वे निन्द-नीय मानते थे जिसे उन्होंने उपनायक के रूप में अंकित किया है। इसके बिना वीर रस का विवेचन हो ही नहीं सकता। अतः भूषण के उपनायक चुनने में उनकी दक्षता, न्याय प्रियता, सत्यनिष्ठता और राष्ट्रीयता का अच्छा परिचय मिलता है। इसी भावना के प्रभाव से भूषण की रचना को हिन्दी में सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त है।

४. संग्रह खण्ड

शिवराज-भूषण

१

विकट अपार भव पन्थ के चले को,
श्रम हरन करन बिजना से ब्रह्म ध्याइये !
यहि लोक परलोक सुफल करन,
कोक नद से चरन, हिये आनि के जुड़ाइये ॥
अलि - कुल - कलित - कपोल - ध्यान - ललित
अनन्द-रूप-सरित में भूषण अन्हाइये ।
पाप-तरु भञ्जन, विघन-गढ़ गञ्जन,
जगत मन रञ्जन, द्विरद मुख गाइये ॥

२

जै जयन्ति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि ।
जै मधु कैटभ छलनि देवि जै महिष विमर्दिनि ॥
जै चमुण्ड जै चण्ड मुण्ड भण्डासुर खंडिनि ।
जै सुरक्त जै रक्त बीज विड्डाल बिहण्डिनि ॥
जै जै निसुम्भ सुम्भद्दलनि, भनि भूषन, जै जै भननि ।
सरजा समत्थ सिवराज कहँ, देहि बिजै जै जग जननि ॥

३

तरनि, जगत जल निधि तरनि, जै जै आनन्द ओक ।
कोक कोकनद सोक हर लोक लोक आलोक ॥

४

दसरथ जू के राम भे; बसुदेव के गोपाल ।
सोई प्रगटे शाहि के, श्री शिवराज भुवाल ॥

५

जापर साहि तनै शिवराज सुरेश की ऐसी सभा सुभ साजै ।
यों कवि भूषण जम्पत है, लखि सम्पतिको अलका पतिलाजै ॥
जामधि तीनहु लोक को दीपति ऐसो बड़ो गढ़राज विराजै ।
वारि पताल सिमाचो मही, अमरावति को छवि ऊपर छाजै ॥

६

मिलतहि कुरूख चकत्ता कौं निरखि कीन्हों,
सरजा, सुरेश ज्यों दुचित ब्रजराज को ।
भूषण, कुमिस गैर मिसिल खरे किये को,
किये म्लेच्छ मुरछित करि कै गराज को ॥
अरे ते गुसलखाने बीच, ऐसे उमराय,
लै चले मनाय, महाराज शिवराज को ।
दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार-गजराज को ॥

७

इन्द्र जिमि जम्भ पर वाडव सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है ।
पौन बारिवाह पर सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम दण्ड पर चीता मृग झुण्ड पर,
भूषण, बितुण्ड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम अंश पर कान्ह जिमि कंस पर,
यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है ॥

८

कलिजुग जलधि अपार, उद्धं अधरम्म उम्मिमय ।
लच्छनिलच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ नगरचय ॥

नृपति नदी नद वृन्द होत जाकों मिलि नीरस।
भनि भूषण सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस॥
हिन्दुवान पुन्यगाहक-बनिक, तासु निबाहक साहि सुव।
बर बादवान किरवान धरि जस जहाज सिवराज तुव॥

९

जेते हैं पहार भुव पारावार माहिं,
तिन सुनि के अपार कृपा गहे सुख फैल हैं।
भूषन भनत, साहि तनै सरजा के
पास आइबे कों चढ़ी उर हौंसनि की ऐल हैं॥
किरवान बज्र सो बिपच्छ करिबे के,
उर आनि कै कितेक गहे सरन की गैल हैं।
मघवा मही मैं तेज वान सिवराज बीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल हैं॥

१०

चमकतीं चपला न, फेरत फिरंगैं भट,
इन्द्र को न चाप, रूप बैरष समाज को।
धाए धुरवा न, छाए धूरि के पटल मेघ,
गाजिबो न, बाजिबौ है दुन्दुभी दराज को॥
भौंसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं,
'पिय भाजौ' देखि उदौ पावस के साज को।
घन की घटा न, गज घटनि सनाह साज,
भूषन भनत, आयो सेन सिवराज को॥

११

जाहि पास जात सो तो राखि न सकत,
याते तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूषन भनत शिवराज तव कित्तसम
और की न कित्ति कहिबे कों काँधियतु है॥

इन्द्र कौ अनुज तें उपेन्द्र अवतार याते,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसाइबे को,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥

१२

बासब से बिसरत, बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत वीर बखत-बिलन्द के।
जागे तेजबृन्द सिवाजी नरिन्द मसनन्द,
माल मकरन्द कुलचन्द साहिनन्द के॥
भूषन भनत, देस देस बैरि नारिन में,
होत अचरज घर घर दुख दंद के।
कनक लतानि इन्दु, इन्दु माहिं अरविन्द,
भरैं अरविन्दन तें बुन्द मकरन्द के॥

१३

उद्धत अपार तब दुन्दुभी धुकार साथ,
लंघैं पारावार बालवृन्द रिपुगन के।
तेरे चतुरङ्ग के तुरङ्गन के रँगे रज,
साथही उड़ात रज पुंज हैं परन के॥
दच्छिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
भूषन असीसैं, तोहि करत कसीसैं, पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के॥

१४

चढ़त तुरङ्ग चतुरङ्ग साजि सिवराज,
चढ़त प्रताप दिन दिन अति अङ्ग मैं।
भूषन चढ़त मरहट्ठन के चित्त चाउ,
खग्ग खुलि चढ़त है अरिन के अङ्ग मैं॥

भौंसिला के हाथ गढ़ कोट हैं चढ़त,
अरि जोट हैं चढ़त एक मेरुगिरि सङ्ग मैं।
तुरकान गन ब्योमयान हैं चढ़त,
बिनुमान है चढ़त बदरङ्ग अबरङ्ग मैं॥

१५

चाहंत निर्गुन सगुन कों, ज्ञानवंत की बान।
प्रगट करत निर्गुन सगुन, शिवा निवाजी दान॥

१६

तिभुवन मैं परसिद्ध एक अरिबल वह खण्डिय।
यह अनेक अरिबल बिहण्डि रन मण्डल मण्डिय॥
भूषन वह ऋतु एक पुहुमि पानिपहि बढ़ावत।
यह छहुँ ऋतु निसिदिन अपार पानिप सरसावत॥
सिवराज साहि सुव सत्थ नित हय गय लक्खन संचरइ।
यक्कइ गयन्द यक्कइ तुरङ्ग किमि सुरपति सरवरि करइ॥

१७

कीरति को ताजी करी वाजी चढ़ि लूटि कीन्ही,
भई सब सेन बिनु वाजी बिजैपुर की।
भूषन भनत, भौंसिला भुवाल धाकहीं सों,
धीर धरयौ न फौज कुतुब के धुर की॥
सिंह उदैभान बिन अमर सुजान बिन,
मान बिन कीन्हीं साहिबी त्यों दिली सुर की।
साहि सुव महा बाहु सिवाजी सलाह बिन,
कौन पातसाह की न पातसाही मुरकी॥

१८

बड़ो डील लखि पील को सबन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत मैं ताको हर्यो गुमान॥

१६

सीता संग सोभित सुलाच्छन सहाय जाके,
भू पर भरत नाम भाई नीति चारु है।
भूषन भनत कुल सूर कुल भूषन हैं
दासरथी सब जाके भुज भुव भारु हैं॥
अरि लंक तोर जोर जाके संग वानर है
सिधुर हैं बाँधे जाके दल को न पारु है।
तेगहि कै भेंटै जौन राकस मरद जानै
सरजा सिबाजी राम ही को अवतारु है।

२०

महाराज सिवराज तेरे बैर देखियत,
घन वन है रहे हरम हवसीन के।
भूषन भनत, रामनगर जवार तेरे,
बैर परवाह बहे रुधिर नदीन के॥
सरजा समर्थ वीर, तेरे बैर बीजापुर,
बैरी बैयरनि कर चीन्ह न चुरीन के।
तेरे बैर देखियत आगरे, दिल्ली के बीच,
सिंदुर के बिंदु मुख इन्दु जबनी न के॥

२१

वीर बड़े बड़े मीर पठान खरो रजपूतन को गन भारो।
भूषन आय तहाँ सिवराज लयो हरि औरङ्गजेब को गारो॥
दीन्हों कुज्वाब दिलीपति को अरु कीन्हों वजीरन को मुँह कारो।
नायो न माथहि दक्खिन नाथ न साथ मैं फौज न हाथ हथ्यारो॥

२२

दच्छिन कों दाबि करि बैठो है सइस्तखान,
पूना माहिं दूना करि जोर करवार को।

हिन्दुवान खम्भगढ़पति दल थम्भ भनि
भूषण, भरैया कियो सुजस अपार को ॥
मनसबदार चौकीदारन गंजाय मह-
लन में मचाय महाभारत के भार को।
तो सो को सिवाजी जेहि दोसौ आदमी सों जीत्यो
जंग सरदार सौ हजार असवार को।

२३

तादिन अखिल खल भलैं खल खलक में
जादिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं॥
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल
देखि भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होंहि बैरिन के
झुण्डन में कारे घन उमड़ि अंगारे बरखत हैं॥

२४

जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो जोऽब
इन्द्र आवै सोऊ लागे औरंग की परजा।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी,
तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा॥
ठान्यो न सलाम, भान्यो साहि को इलाम धूम
धाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा।
जासों बैर करि भूप बचै न दिगन्त ताके
दन्त तोरि तखत तरे ते आयो सरजा॥

२५

जावलि बार सिंगारपुरी औ जवारिको राम के नैरि को गाजी।
भूषन भौंसिला भूपति तैं सब दूरि किये करि कीरति ताजी॥

बैर कियो सिवजी सों खवासखां डौडिये सैन बिजैपुर बाजी ।
बापुरो एदिल साहि कहाँ कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी ॥

२६

बेदर कल्यान दै परेभा आदि कोट साहि,
एदिल गंवाय है नवाय निज सीस को ।
भूषन भनत, भाग नगरी कुतुब साई,
दैकरि गँवायो राम गिरि से गिरास को ॥
भौंसिला भुवाल साहि तनै गढ़ पाल दिन
दोऊ न लगाये गढ़ लेत पञ्चतीस को ।
सरजा शिवाजी जयसाह मिरजा को लीने,
सौगुनी बड़ाई गढ़ दीने हैं दिलीस को ॥

२७

सिवाजी खुमान सलहेरि मैं दिलीदल कौ,
किन्हों कतलाम करबाल गहिकर मं ।
सुभट सराहे चन्द्राबत कछवाहे, ढाहे,
मुगलौ पठान फरकत परे फर मैं ॥
भूषन भनत, भौंसिला के भट उदभट
जीति घर आएधाक फैली घर घर मैं ।
मारु के करैया अरि अमर पुरैगे तऊ,
अजौं मारु मारु सोर होत है समर मैं ॥

२८

कोट गढ़ दै कैं माल मुलुक मैं बीजापुरी,
गोल कुण्डा बारो पीछे ही कों सरकतु है ।
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भुजबल सों,
रेबा हा के पार अबरंग हरकतु हैं ॥
पस कसैं भेजत इरान फिरगान पति
उनहू के उर याको धाक धरकतु है ।

साहितनै सिवाजी खुमान या जहान पर,
कौन पातसाह के न हिए खरकतु है ॥

२६

अति मतवारे जहँ दुरदै निहारियत,
तुरगन ही मैं चंचलाई परकीति है।
भूषन भनत जहाँ पर लागैं बानन मैं,
कोक पच्छिनहि माँहि बिछुरन रीति है॥
गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के लोक
बन्धै जहाँ एक सरजा की गुन प्रीति है।
कम्प कदली मैं, वारि बुन्द बदली मैं सिव,
राज अदली के राज मैं यों राजनीति है॥

३०

बैर कियो सिवचाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैंठो।
योंहि मलिच्छहि छांडै नहीं सरजा मन तापर रोस मैं पैठो॥
भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कैसिंह को पाउँ उमैठो।
बीछू के घाय धुक्यो धरक्क है तो लगी धाय धराधर बैठो॥

३१

माँगि पठायो सिवा कछु देश वजीर अजानन बोलगहै ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों भूपन जो दिन दोय लगेना॥
धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आयगो खान खवास के फेना।
भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिल साहि की सेना॥

३२

मानसर वासी हंस वंश न समान होत,
चन्दन सों घस्यो घन सारऊ धरीक है।
नारद की सारद की हाँसी मैं कहाँ की आभ,
सरद की सुरसरी को न पुण्डरीक है॥

भूषन भनत छक्यो छीरधि मैं थाह लेत,
फन लपटानो ऐरावत को करी कहै।
कैयलास ईस, ईस सीस रजनीस वहौ,
अवनीस सिवा के न जस को सरीक है॥

३३

देस दहपट्ट कीने, लूटि के खजाने लीने,
बचै न गढ़ाई काहू गढ़ सिर ताज के।
नोरादार सकल तिहारे मनसबदार,
डाँडे, जिनके सुभाय जंग दै मिजाज के॥
भूषण भनत, बादशाह को यों लोग सब,
वचन सिखावत सलाह की इलाज के।
अबरे की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै वैर,
रावरे के वैर होत काज सिवराज के॥

३४

दौलति दिल्ली की पाय कहाये आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के विरद बिसरायें तैं।
भूषण भनत, लरि लरि सरजा सों जंग,
निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तें॥
सुधर्यो न एको साज, भेजि भेजि वे ही काज,
बड़े बड़े वे इलाज उमराव मारें तैं।
मेरे कहे मेर करू सिवाजी सो वैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारैं तै॥

३५

पम्पा मानसर आदि अगन तलाब लागे,
जेहि के परन मैं अकथ युत गथके।
भूषण यों साज्यों राय गढ़ सिवराज रहे;
देव चक चाहि कै बनाये राजपथ के॥

बिन अवलम्ब कलिकानि आसमान मैं ह्वै,
होत बिसराम जहाँ इन्दु और उदथ के।
महत उतंग मनि ज्योतिन के संग आनि,
कैयो रंग चकहा गहत रवि रथ के॥

३६

पावस की एक राति भली सु महा बली सिंह सिवा तमके ते।
म्लेच्छ हजारन हीं कटिगे दसही मरहट्ट के झमके ते॥
भूषण हालिउठे गढ़ भूमि पठान कबंधन के धमके ते।
मीरन के अवसान गये मिलि धोपनि सों चपलाचमके ते॥

३७

अहमद नगर के थान किरवान लै के,
नौ सेरी खान ते खुमान भिर्यों बलते।
प्यादन सों प्यादे पर बरैतन सों परबरैत,
बखतर बारे बखतर बारे हल ते॥
भूषण भनत, एते मान घमासान भयो,
जान्यो न परत कौन आयो कौन दलते।
सम बेष ताके, तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
बीर जाने हाँक देत, मीर जाने चलते॥

३८

उमडि कुडाल मैं खवास खान आए भनि
भूषण त्यों धाए सिवराज पूरे मनके।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर
मूछें तरराने मुख बीर धीर जनके॥
एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरैं मार बीच बे सम्हार तन के।
कुण्डन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के॥

३९

अजौं भूत नाथ मुण्ड माल लेत हरषत,
भूतन अहार लेत अजहुँ उछाह है।
भूषण भनत अजौं काटे करबालन के,
कारे कुञ्जरन परी कठिन कराह है॥
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हो कतलाम दिल्ली दल को सिपाह है।
नदी रन मण्डल रुहेलन रुधिर अजौं,
अजौं रबिमंडल रुहेलन की राह है॥

४०

आजु यहि समै महराज सिवराज तुही,
जगदेव, जनक जजाति अम्बरीक सो।
भूषण भनत, तेरे दान जल जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो॥
चन्द कर किंजलक, चाँदनी पराग, उड़,
बृन्द मकरन्द बुन्द पुंज के सरीक—सो।
कन्द सम कयलास नाक गंग नाल तेरे,
जस पुण्डरीक को अकास चंचरीक सो॥

४१

दारुन दइत हिरनाकुस बिदारिबे को,
भयो नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्यों ही रावन के मारिवे को,
रामचन्द्र भयो रघुकुल सरदार है॥
कंस के कुटिल बल बंसन बिधुंसिवे को,
भयो यदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथ्वी पुरूहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिवे को तेरो अवतार है॥

४२

लिय धरि मोहकम सिंह कहँ अरु कुमार नृपकुम्म ।
श्री सरजा संग्राम किय भुम्मिम्मधि करि धुम्म ॥
भुमिम्मधि किय धुम्मिम्मडि रिपु जुम्मम्मलि करि ।
जंगग्गरजि उतंगग्गरव मतंगग्गन हरि ॥
लक्खक्खनरन दक्खक्खलनि अलक्ख किखति भरि ।
मोलल्लहि जस नोलल्लरि बहलोलल्लिय धरि ॥

४३

अरिन के दल सैन संगर मैं समुहाने,
टूक-टूक सकल कै डारे घमासान मैं ।
बारबार करो महानद परवाह पूरो,
बहत हैं हाथिन के मद जल दान मैं ॥
भूषन भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल
सूर रवि कैसो तेज तीखन कृपान मैं ।
माल मकरन्द जू के नन्द कलानिधि तेरो
सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं ॥

शिवा बावनी

—१—

विज्ञपूर बिदनूर सूर सर धनुप न संधहि।
मंगल विनु मल्लारि नारि धम्मिल्ल नहि बंधहिं॥
गिरत गब्भ कोटै गरब्भ चिंजी चिजा डर।
चालकुंड, दलकुंड गोलकुंडा संका उर॥
भूषन प्रताप सिवराज तव, इमि दच्छिन दिसि संचरै।
मधुराधरेस धक धकत औ द्रबिड़ निबिड़ उर दबि डरै॥

२

दरबर दौर करि नगर उजारि डारि,
कटक कटायो कोटि दुरजन दरब की।
जाहिर जहान जंग जालिम है जोरावर,
चलै न कछूक अब एक राजा रब की॥
सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप,
थर थर काँपति बिलाइति अरब की।
हालत दहिल जात काबुल कंधार वीर,
रोस करि काढ़ै समसेर ज्यों गरब की॥

३

कोट गढ़ ढाहियतु एकै पातसाहन के,
एकै पात साहन के देश दाहियतु है।
भूषन भनत महाराज सिवराज एकै,
साहन की फौज पर खग्ग वाहियतु है॥
क्यों न होहिं बैरिन की बैरि-बधू बौरी सुनि,
दौरनि तिहारे कहो क्यों निबाहियतु है।

रावरे नगारे सुनि बैर बारे नगरन,
नैन बारे नदन निवारे चाहियतु है ॥

४

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार,
दिल्ली दहसति, चितै चाह करपति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर—पति,
फिरति फिरंगिन की नारी फरकति है ॥
थर थर कांपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसहन की छाती दरकति है ॥

५

फिरंगाने फिकिरि औ हदसनि हबसाने,
भूषन भनत कोऊ सोवत न घरी है।
बीजापुर बिपति बिडरि सुनि भाजे सब,
दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है ॥
राजन के राज सब साहन के सिरताज,
आज सिवराज पातसाही चित धरी है।
बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार,
धाम धाम धूमधाम रूम साम परी है ॥

६

गढ़न गँजाय गढ़ धरन सजाय करि,
छांड़े केते धरम दुआर दै भिखारी से।
साहि के सपूत पूत वीर सिवराज सिंह,
केते गढ़धारी किये बन बनचारी से ॥

भूषन बखानै, केते दीन्हें बन्दीखाने सेख,
सैयद हजारी गहे रैयत बजारी से।
महतो से मुगुल महाजन से महाराज,
डाँडि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से॥

७

जीत्यो सिवराज सलहेरि को 'समर सुनि,
सुनि असुरन के सुसीने धरकत हैं।
देवलोक नागलोक नरलोक गावैं जस,
आजहूँ लों परे खगदन्त खरकत हैं॥
कंटक कटक काटि कीट से उड़ाये केते,
भूषन भनत मुख मोरे सरकत हैं।
रनभूमि लेटे अध फेंटे अरसेंते परे,
रुधिर लपेटे पठटे फरकत हैं॥

८

चन्द्र राव चूर करि जावली जपत कीन्हों
मारे सब भूप औ सँहारे पुर धाय कैं।
भूषन भनत तुरकान दलथंभ काटि,
अफजल मार डारे तबल बजाय कैं॥
एदिल सों बेदिल हरम कहैं बारबार,
अब कहा सोवो सुख सिंहहि जगाय कैं।
भेजना है भेजो सो रिसालैं, सिवराज जूकी,
बाजी करनालैं परनालैं पर आय कैं॥

९

दारा की न दौर यह रारि नहीं खजुवे की,
बाँधिवो नहीं है किधौं मीर सहवाल को।

मठ विश्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
देव को न देहरा न मन्दिर गोपाल को,
गाढ़े गढ़ लीन्हें और बैरी कतलाम कीन्हें
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्लीपति
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को॥

१०

मारि करि पातसाही खाक साही कर दीन्हीं,
छीन लीन्हीं छिति हद सब सिरदारे की।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सबै,
हिसि गई हिम्मत ही हियते हजारे की॥
भूषन भनत भारे धौंसा की धुकार बाजे,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दच्छिनी दमाक दार दूल्हो शिवराज भयो,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की॥

११

अज़फ़ल खान गहि जा ने मयदान मारा,
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है।
भूषन भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि,
हबस तुरूक डारे पलटि जहाज है॥
देखत में खान रुसतम जिन खाक कियो,
सालति सुरति आजु सुनी जो अवाज है।
चौंकि-चौंकि चकता कहत चहुँघा ते यारो,
लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है॥

१२

सपत नगेस, चारो कुकुभ गजेस कोल,
कच्छप दिनेस धरैं धरनि अखंड को।

पापी घालैं धरम सुपथ चाले मारतंड,
करतार प्रन पाले प्रानिन के चंड को ॥
भूषन भनत सदा सरजा सिवाजी गाजी,
म्लेच्छन को मारै करि कीरति घमंड को ।
जग काज वारे निहचिंत करि डारे सब,
भोर देत आसिष तिहारे भुज दंड को ॥
तेरो तेज सरजा समत्थ ! दिनकर सोहै,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सों ।
भौंसिला भुआल ! तेरो जस हिमकर सोहै,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सों ।
भूषन भनत तेरो हियो रतनाकर सो, ।
रतनाकरो है तेरे हिय सुख कर सो ।
साहि के सपूत सिव साहि दानि तेरो कर,
सुरतरू सो है, सुरतरू तेरो कर सो ॥४४॥
सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल हठी,
भठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो ।
भूषन भनत, देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धारि को हुवै न हटक्यो ।
साहि के सिवाजी गाजी सरजासमत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यो ।
ता बिगरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो ॥४५॥
कवि कहै करन करनजीत कमनत,
अरिन के उर माहिं कीन्ह्यो इमिछेव है ।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धरा धरन को मेट्यो अहमेव है ।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,

राज काज देखि कोई पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहैं,
बहरी निजाम के जितैया कहै देव है ॥४६॥

मालती सवैया।

दानव आयो दगाकरि जावली दीह भयारो महामद भार्‌यो।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेटिबे को निरसंक पधार्‌यो।
बीछू के धाय गिरे अफ़ज़ल्लहि ऊपर ही सिवराज निहार्‌यो।
दाबियों बैठो नरिन्द अरिन्दहि मानो मयन्द गयन्द पछार्‌यो॥४७॥
साहितनै सिव साहि निसा में निसाँक लियो गढ़,सिह सोहानो।
राठि वर को सहाँर भयो लरिकै सरदार गिरयो उदैभानो।
भूषण यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानो।
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानो॥४८॥

कवित्त मनहरण।

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूट्यो तलब खाँ मानहुँ अमाल है।
भूषण भनत लूट्यो पूना में सइस्तखान,
गढ़न में लूट्यो त्यों गढ़ोइन को जाल है।
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरिघेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है॥४९॥
अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेसकरि कैं।
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को
बाना तजि, भूषण भनत, गुन भरि कैं।
हाड़ा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमारू धरि डरि कैं।

अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि धीर,
धरि, ऐंड़ धरि, तेग धरि, गढ़ धरि कैं ॥५०॥
मदजल धरन द्विरद बल राजत
बहुजल धरन जलद छबि साजे ।
भूमि धरन फन-पति है लसत,
तेज धरन ग्रीषम रबि छाजै ।
खग्ग धरन सोहे भट रन में,
भूप लसत गुन-धरन समाजै ।
दिल्ली दलन दक्छिन दिसि थंभन,
ऐंड़ धरन सिव राज विराजै ॥५१॥
छूट्यो है हुलास आम खास एक संग, छूट्यो,
हरम सरम एक, संग बिनु ढंग ही,
नैनन तें नीर धीर छूट्यो एक संग छूट्यो,
सुख रुचि मुख रुचि त्यों ही बिन रंग ही ।
भूषन बखानै, सिवराज, मरदाने तेरी,
धाक बिललाने, न गहत बल अंग ही ।
दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजै,
उत्तर की आस जीव आस एक संग ही ॥५२॥
उत्तर पहार बिधनौल खण्डहर झार,
खण्डहु प्रचार चारु के ली है बिरद की ।
गौर गुजरान अरू पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति माररद की ।
भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो आपनी ऊँचाई लखे कद की ।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की ॥५३॥

बचैगा न समुहाने, बहलोल खाँ अयाने,
भूषण बखाने दिल आन, मेरा बरजा।
तुझ ते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा।
साहन के साह उसी औरंग के लीन्हें गढ़,
जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली दल का दलन,
अफजल का मलन सिवराज आया सरजा ॥५४॥

मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत है बैरिन के मुंहकारे।
भूषन तेरे अरून्न प्रताप सपेत लखे कुनवा नृप सारे।
साहि तनै तव कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भौ होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जातन जारे ॥५५॥

कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत है खरी अखिल खल की।
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कटि नाक सिगरेई दिली दल की।
सूरत जराई कियो दाह पातसाही उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी ॥५६॥
सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नाहिं अकुलात हैं।
भूषन भनत, महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।

सरजा सवाई कासों करि कविताई तब,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खंड महि,
मण्डल की कहा ब्रह्मंड ना समात है ॥५७॥

मालती सवैया

मोरंग जाहु कि जाहु कुमाऊं सिरी नगरै कि कवित्त बनाए।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चित्तौरहि धाए।
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बुलाए।
भूषन गाय फिरौ महि मैं बनि है चितचाह सिवाहि रिझाए ॥५८॥

कवित्त मनहरण

बिना चतुरंग संग बानरन लै के बांधि,
वारिध को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्हीं नगरी विराट मैं बड़ाई है।
भूषन भनत, ह्वै गुसलखाने मैं खुमान,
अवरंग साहिबी गुमान हरि लाई है।
तौ कहा अचंम्भो महाराज सिवराज सदा,
वीरन के हिम्मतै हतियार होत आई है ॥५९॥

कवित्त मनहरण

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जङ्ग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है।

तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ।।१३।।
बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देश देस के।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निशाने सिवराज जू नरेश के।
हाथिन के हौदा उकसाने, कुम्भ कुञ्जर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरानन ते कमठ करारे फूटे,
केरा केसे पात विहराने फन सेस के ।।१४।।
प्रेतिनी पिसाचरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुरी आई है।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछे सिव सों समाजु आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा-नरेश भृकुटी चढ़ाई है ।।१५।।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिवे के जोग,
ताहि खरो कियो छै हजारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महावीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ।।१६।।

केतकी भो राना और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर लेत रस नित यह काज है।
सिगरे अमीर भये कुन्द मकरन्द भरे,
भृङ्ग से भ्रमत लखि फूल के समाज है।
भूषन भनत सिवराज वीर तैंही देस,
देसन मैं राखी सब दच्छिन की लाज है।
त्यागे सदा षटपद पद अनुमान यह,
अलि अवरंग जेब चंपा सिवराज हैं ॥१७॥
कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी बिराज है।
पाँडर पँवार जूही सोहत है चंदावत,
सरस बुदेला सो चमेली साजबाज है।
भूषन भनत मुचुकुन्द बड़गूजर है,
बघेले बसन्त सब कुसुम समाज है।
लेइ रस एतेन को बैठ न सकत अहै,
अलि अवरङ्गजेब चम्पा सिवराज है ॥१८॥
छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हूँ की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि पराहल्ला बीरवर जोट मैं।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परै कोट मैं ॥१९॥

मालती सवैया

केतिक देस दल्यो दल के बल, दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो।
रूप गुमान हर्यो गुजरात को सूरत को रस चूसि कै नाख्यो ॥

पन्नन पेलि मलिच्छ मले सब, सोइ बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रंग है सिवराज बली, जिन नौरंग में रंग एक न राख्यो ॥२०॥

कवित्त मनहरण

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को।
भूषन अखंड नवखण्ड महि मण्डल में,
तम पर दावा रवि किरन समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥२१॥

वारिधि के कुम्भभव घन बन दावानल,
तरुन तिमिर हूँ के किरन समाज हौ।
कंस के कन्हैया, कामधेन हू के कंठकाल;
कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हौ।
भूषन भनत जंग जालिम के सची पति,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कार्त बीज के परसुराम,
दिल्ली पति दिग्गज के सेर सिवराज हौ ॥२२॥

मौरंग कुमाऊँ औ पलऊ बाँधे एक पल,
कहाँ लौं गिनाऊँ जेऽब भूपन के गोत हैं।
भूखन भनत गिरि विकट निवासी लोग,
बावनी बवंजा नव कोटि धुँध जोत हैं।
काबुल कंधार खुरासान जेर कीन्हें जिन,
मुगल पठान सेख सैयदहु रोत हैं।

अब लग जानत हे बड़े होत पातसाह,
सिवराज प्रकटे ते राजा बड़े होत हैं ॥२३॥

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नाचे रुण्ड मुण्ड फरके।
भूषन भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल कों सरके।
मारे सुनि सुभट पनारे वारे उद्भट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़ धर के।
बीजापुर बीरन के गोल कुण्डा धीरन के;
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ॥२४॥

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन,
सहर सिरोज लौं परवाने परत हैं।
गोड़वानो तिलंगानों फिरगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं।
साहि के सपूत सिवराज, तेरी धाक सुनि,
गढ़पति बीर तेऊ धीरन धरत हैं।
बीजापुर गोलकुण्डा आगरा दिल्ली के कोट,
बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ॥२५॥

मारि करि पातसाही खाक साही कीन्हीं जिन,
जेर कीन्हों जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब,
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग भारे की।
बाजत दमामे लाखौं धौंसा आगे घहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे,
दिल्ली दुलहिन भइ सहर सितारे की ॥२६॥

जिन फन फुतकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विष-ज्वाल ज्वाला मुखी लवलीन होत जिन,
भारन चिकारि मद दिग्गज उगलियो।
कीन्हों जिन पान पयपान सो जहान सब
कोलहू उछलि जल सिन्धु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जूको,
अखिल भुजंग मुगल दल निगलिगो ॥२७॥

२५

सारस से सूबा करवानक से साहजादे,
मोर से मुगल मीर धीर ही धचै नहीं।
बगुला सो बंगस बलूचियो बतक ऐसे,
काबुली कुलंग याते रन में रचै नहीं॥
भूषन जू खेलत सितारे में सिकार साहू,
संभा को सुवन जाते दुवन संचै नहीं।
बाजी राब बाज ही चपेटैं चंगु चहूँ ओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचै नहीं॥

छत्रसाल प्रशंसा

हैबर हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम,
पैदर के हठ फौज जुरी तुरकाने की ।
भूषण भनत राय चम्पति कौ छत्रसाल,
रुप्यौ रन ख्याल ह्वै के ढाल हिन्दुवाने की ।।
कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे,
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की ।
सैद अफगन सेन सगर सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ।।१।।
तहबरखान हराय ऐंड़ अनवर की जंग हरि ।
सुतरुदीन बहलोल गये अबदुल समद्द मुरि ।
महमद को मद मेटि शेर अफ़ग़ानहि ज़ेर किय ।
अति प्रचंड भुजदंड बलन केहि नाहि दंड दिय ।
भूषण बुँदेल छत्रसाल डर रंग तज्यो अवरंग लजि ।
झक्के निशान तजि समर सों मक्के तक्कि तुरक्क भजि ।।२।।
निकसत म्यानते मयूखैं प्रलै भानु कैसी;
फारे तम तोम से गयंदन के जाल को ।
लागत लपटि कंठ बैरिन के नागिनिसी;
रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन की माल को ।।
"लाल" छितिपाल छत्रसाल महा बाहु बली;
कहां लो बखान करौं तेरी करवाल को ।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिकासी किलकि कलेऊ देति काल को ।।३।।
रैया राव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत गजराज जोम जमकैं ।
भादौं की घटा सी उड़ि गरद गगन घेरें,
सेलैं समसेरैं फिरैं दामिनि सी दमकैं ।

खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं।
बैहर बगारन की, अरि के अगारन की,
लाँघती पगारन नगारन की धमकैं ॥४॥
चाक चक-चमू कै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक सी फिरत धाक चंपति के लाल की।
भूषन भनत पात साही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव न करेरी करवाल की।
सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीति लेवा तेऊ ह्वै कै दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ॥५॥
सांगन सों पेलि पेलि खग्गन सो खेलि खेलि,
समद सा जीता जो समद लौं बखाना है।
भूषन बुंदेला-मनि चंपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियाँना है।
जंगल के बल से उदंगल प्रगल लूटा,
महमद अमीर खां का कटक खज़ाना है।
बीर-रस मत्ता जाते काँपत चकत्ता यारो,
कत्ता ऐसा बाँधिये जो छत्ता बाँधि जाना है।६।

देस दहपट्टि आयो आगरे दिल्ली के मेंडे,
बरगी बहुरि मानौं दल जिमि देवा-को।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल-मनि,
ताके ते कियो बिहाल जंग जीति लेवा को।
खंड खंड सोर यों अखंड महि-मंडल में,
मंडित बुन्देलखंड मंडल महेवा को।

दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को ॥७॥
अस्त्र गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के,
उत ते पठानन हू कीन्ही झुकि झपटैं।
हिम्मति बड़ी कै गवड़ी के खिलवारन लौं,
देत से हजारन हजार बार चपटैं।
भूषन भनत काली हुलसी असीसन कौं,
सीसन कौं ईस की जमाति जोर झपटैं।
समद लौं समद की सेना त्यों बुंदेलन की;
सेलैं समसेरैं भई बाड़व की लपटैं ॥८॥
भुज भुज गेस की वैसंगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह ,दारुन दलन के।
बखतर पाखरिन बीच धँसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैया राव चंपति को छत्रसाल महाराज,
भूषण सकत करि बखान यों बलन के।
पच्छी-पर छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥९॥
राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ॥१०॥

फुटकर

१

बाप ते बिशाल भूमि जीत्यो दस दिसिन ते,
महिमें प्रताप कीनो भारी भूप भान सों।
ऐसो भयों साहि के सपूत सिवराज बीर,
तैसो भयो होत है न ह्वै है कोऊ आन सों॥
एदिल कुतुबसाह औरंग के मारिबे को,
भूषन भनत को सरजा खुमान सो।
तीन पुर त्रिपुर के मारे शिव तीन बान,
तीन पातसाही हनी एक किरवान सों॥

२

कौन करे बस बस्तु कौन यहि लोक बड़ो अति।
को साहस को सिन्धु कौन रज लाज धरे मति।
को चकवा को सुखद बसै को सकल सुमन महि।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि देत माँगे को सो कहि।
जग बूझत उत्तर देत इमि कवि भूषण कविकुल सचिव।
दच्छिन नरेस सरजा सुभट साहिचंद मकरन्द सिव॥

३

सूबा निरानंद बादराखन गे, लोगन बूझत ब्यौंत बखानो।
दुग्ग सबै सिवराज लिये धरि, चारु बिचार हिये यह आनो॥
भूषन, बोल उठे सिगरे हुतो पूना में साइत खान को थानो।
जाहिर है जग में जसवंत लियो गढ़ सिंह में गीदर बानो॥

४

भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निजाम बेग
इतै गुजरात उतै गंग ज्यों पतारा की।
एक यश लेत अरि फेरा फिर गढहू को
खंडी नव खंड दिये दान ज्योऽब तारा की॥

सहायक ग्रन्थों की सूची

हस्तलिखित

१. भूषण ग्रन्थावली — काशीराज पुस्तकालय आदि
२. शिवा बावनी — विविध प्रतियाँ
३. साहित्य सिंधु — ×
४. वृत्त कौमुदी — मतिराम द्वितीय
५. अलंकार पंचाशिका — मतिराम द्वितीय
६. विक्रम सतसई की रस चन्द्रिका टीका
७. पिंगल — चिंतामणि
८. प्रबोध रस सुधा सर — नवीन
९. फतह प्रकाश — रतन
१०. कान्यकुब्ज वंशावली — ×
११. सुरकियों की वंशावली आदि — पटेहरा राज
१२. श्री लालजी महापात्र असनी के कवित्तों का संग्रह
१३. भिनगराज पुस्तकालय में संगृहीत कवित्त संग्रह आदि
१४. रीवाँ राज रेकर्ड ऑफिस के सम्बन्धित कागज, सोलकियों की वंशावली आदि
१५. भरतपुर राज के कागज-पत्र
१६. तिकमापुर तथा बांद (कानपुर) मतिराम के वंशजों की वंशावली, पत्रादि

प्रकाशित

१७. मिश्रबन्धु विनोद
१८. हिन्दी नवरत्न
१९. शिवसिंह सरोज
२०. हिन्दुत्व : सावरकर
२१. कुमाऊँ राज का इतिहास
२२. रीवाँ राज्य दर्पण

२३. तवारीख बुन्देलखण्ड (उर्दू)
२४. राजस्थान : टाड
२५. मराठा इतिहास : पारसनीस
२६. मराठा इतिहास : किर्लोस्कर
२७. छत्रपति शिवा : बी० एन० सेन
२८. वंश भास्कर
२९. तज़किरए सर्व आज़ाद हिन्द (फ़ारसी)
३०. औरंगजेबनामा
३१. बुन्देलखण्ड का इतिहास
३२. मतिराम सतसई
३३. छत्रसाल
३४. वीरसिंहदेव चरित (केशव)
३५. हिम्मत बहादुर विरुदावली (पद्माकर)
३६. छत्रप्रकाश
३७. कविता कौमुदी
३८. ललित ललाम
३९. रसराज
४०. रहिमन विनोद
४१. रहिमन विलास
४२. शिवराज शतक (गुजराती)
४३. राधा माधव विलास चम्पू (मराठी)
४४. शिव भारत (संस्कृत)
४५. शिव दिग्विजय (संस्कृत)
४६. कुवलयानन्द (संस्कृत)
४७. साहित्य दर्पण : टीका सालिगराम
४८. काव्य प्रकाश : मम्मट
४९. कविकुल कल्पतरु : चिंतामणि
५०. बैस क्षत्रिय वंशावली
५१. राजरत्नमाला : मुंशी देवी प्रसाद
५२. भगवन्तराय रासा-सदानन्द
५३. सुजान चरित : सूदन
५४. शृंगार संग्रह : सरदार
५५. सोर्स बुक ऑव् मराठा (अँग्रेजी)
५६. रेकर्ड ऑन शिवाजी (अँग्रेजी)
५७. शिवाजी : जदुनाथ सरकार
५८. औरंगजेब : जदुनाथ सरकार
५९. बीसलदेव रास : माता प्रसाद गुप्त
६०. भूषण विमर्श : दीक्षित
६१. वीरकाव्य : उदयनारायण तिवारी
६२. हिंदी साहित्य का आदिकाल : द्विवेदी
६३. सं० पृथ्वीराजरासो—हजारी प्रसाद द्विवेदी
६४. हिंदी साहित्य का इतिहास : केयी
६५. हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य शुक्ल

६६. हिन्दी साहित्य का आलो० इतिहास : वर्मा
६७. हिंदी साहित्य का इतिहास- श्यामसुंदर दास
६८. बार्डिक पोइट्री : लाला सीताराम
६९. इंडियन ऐएटीक्वेरी
७०. एशियाटिक जर्नल्स
७१. यू० पी० गज़ेटियर्स
७२. इम्पीरियल गज़ेटियर्स
७३. रीवाँ स्टेट गज़ेटियर्स
७४. बिहार गज़ेटियर्स
७५. आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्टस
७६. माडर्न वर्ना० लिट्रेचर : ग्रियर्सन

पत्र-पत्रिकाएँ

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दुस्तान, माधुरी, सुधा, साहित्य सन्देश, शिक्षा, राजस्थान केसरी, प्रताप, वर्तमान, लीडर, ट्रिब्यून, मार्डन रिव्यू, प्रभा, मनोरमा, विश्वामित्र, स्वाधीनता (मराठी) विशाल भारत, सम्मेलन पत्रिका, साहित्य, गङ्गा, भारत, अर्जुन, आज, और सरस्वती आदि ।

लेखक की अन्य कृतियाँ

१. भूषण विमर्श
२. भारतीय समाज विमर्श
३. वीर काव्य संग्रह (विमर्श)
४. तुलसी विमर्श
५. हमारी तीन सौ पैंसठ तिथियाँ
६. ब्रज साहित्य में जीवन-तत्त्व
७. खेती बारी
८. तुलसी ग्रन्थावली
९. शिवा बावनी

हमारा आलोचना साहित्य

कबीर का रहस्यवाद	डा० रामकुमार वर्मा	३॥)
मलिक मुहम्मद जायसी	डा० कमल कुलश्रेष्ठ	४॥)
हिन्दी कहा० की शिल्प० का विकास	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	१०)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	२॥)
महाकवि भूषण	श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित	२॥)
तुलसी-रसायन	डा० भगीरथ प्रसाद मिश्र	२॥)
प्रकृति और काव्य [हिन्दी]	डा० रघुवंश	६॥)
प्रकृति और काव्य [संस्कृत]	डा० रघुवंश	६॥)
हिन्दी में निबंध साहित्य	श्री जनार्दन स्वरूप	१)
प्रगतिवाद, एक समीक्षा	डा० धर्मवीर भारती	३॥)
हमारे कवि	श्री राजेन्द्र सिंह गौड़	२॥।)
नाटक की परख	डा० एस० पी० खत्री	४)
प्रसाद के तीन ऐति० नाटक	श्री राजेश्वर प्रसाद अर्गल	२॥)
हिन्दी-लोक-गीत	श्रीमती रामकिशोरी	१॥)

साहित्य भवन लिमिटेड
ALLAHABAD